

अक्टूबर 2009

दस रुपये

आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक



- प्रथम जातीय आलोचक :
आचार्य रामचंद्र शुक्ल
— देवेंद्र चौबे
- हिंद स्वराज के सौ वर्ष
— कृष्णदत्त पालीवाल
- रामकथा की चित्रांकन परंपरा :
आर्ष रामायण
— शिवशंकर त्रिपाठी
- शहनाई के जादूगर :
उस्ताद बिस्मिल्ला खां
— नसीम साकेती
- चित्रकार हरिपाल त्यागी से
मजीद अहमद की बातचीत

तीखी हवाएं

हाथ में कोड़ा लिए
तीखी हवाएं आ गई!

फिर समय के वक्ष पर
छल-छद्म के दलदल हुए
हाथ 'गीता' पर रखा
फिर भी न गंगाजल हुए
आस्थाएं क्रूरतम अभिशाप से
मुरझा गई!

यातनाओं के महाजन से
हमें भी ऋण मिला
अर्द्ध सामंती व्यवस्था का
यही है सिलसिला
लाल बहियों में उलझकर
पीढ़ियां घबरा गई!

राजपथ पर जो गए
वे लौटकर आए नहीं
सौम्यता पगडंडियों की
अब उन्हें भाए नहीं
लाजवंती धारणाएं
किस कदर पथरा गई!

अग्निगर्भा

फिर अघोषित लग रहे प्रतिबंध
मन घायल हुआ!

आधियों से जूझकर
फिर बोधितरु आहत हुआ
और पक्षाघात की भी
लग गई उसको दुआ

अग्निगर्भा हो गए संबंध
मन घायल हुआ !

खौफ ने सौ वर्जनाएं
गोद डालीं हाथ पर
कामला से घिर गए
अधिसंख्य फिर नीलाभ चर

जिंदगी बस हो गई अनुबंध
मन घायल हुआ!

छद्म निश्छलता लिए
अधिभार घर आते रहे
टांककर पैबंद हम
हर हाल मुस्काते रहे
आस्था ने तोड़ दी सौगंध
मन घायल हुआ!

सदी की भूल

हो गया अभिशप्त फिर
तालाब का पानी
मछलियों को सूर्य का
आतंक डसता है!

रोज जख्मी हो रहे हैं
अब कमल के फूल
पीढ़ियां ढोती रहेंगी
हर सदी की भूल
हादसा ही
दर्द का इतिहास लिखता है !

नागफनियां पंखुरी पर
लिख रहीं कानून
इस व्यवस्था ने पिया है
आदमी का खून
सभ्यता का
शर्म से सिर आज झुकता है!

विकलांग प्रश्न

बढ़ रही तम की
धुएं से मित्रता
सूर्य का रथ
इस दिशा में लाइए!

'कीचकों' के हाथ
लंबे हो गए
खेत में कंकाल
फिर वे बो गए
फंस गए हैं 'कृष्ण'
किस जंजाल में
अब 'सुदर्शन-चक्र' ही
चलवाइए!

प्रश्न फिर विकलांग
होते जा रहे
उत्तरों के जुलूम
उन पर ढा रहे
इस कदर लाचार
तेवर देखकर
'सव्यसाची' की
कथा दुहराइए!

टूटते संदर्भ
जलते उम्र-भर
मौन संबोधन
लहू से तर-ब-तर
पीठ पर आघात की
पीड़ा असह
आप कुछ तो
आकलन करवाइए!

स्थापित 1945

इस अंक में

आजकल

वर्ष : 65; अंक : 6; पूर्णांक : 780

अक्टूबर 2009; आश्विन-कार्तिक 1931

वरिष्ठ संपादक

योगेन्द्र दत्त शर्मा

संपादक

सीमा ओझा

आवरण सज्जा : रुचिका

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक

आजकल : प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 120, सूचना भवन

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

फोन : 2436 2915

website :

www.publicationsdivision.nic.in

उत्पादन अधिकारी

जे. के. चंद्रा

चंदे की दरें :

वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्षों : 180 रुपये;

तीन वर्षों : 250 रुपये

चित्रों में (हवाई शक से)

एक वर्ष : पंद्रहवीं देश : 530 रुपये

शेष विश्व : 730 रुपये

चंदे संबंधी पूछताछ :

सूर्यकांत शर्मा

विनयन एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लॉक-1,

लेवन-7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइप सेटिंग

लेख

9. एक जीवंत व्यक्तित्व : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

मूर्धन्य समालोचक और इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर मुक्ता

13. हिंद स्वराज के सौ वर्ष

हिंद स्वराज की शताब्दी पर गांधीजी के चिंतन-दर्शन की चर्चा कर रहे हैं कृष्ण दत्त पालीवाल

17. पेंटिंग से स्वयं भी निर्मित होता है कलाकार

सुविख्यात चित्रकार हरिपाल त्यागी से मजीद अहमद की बातचीत

23. बेमिसाल खूबसूरती का नाम स्विटजरलैंड

खूबसूरत देश स्विटजरलैंड की यात्रा का विवरण प्रस्तुत कर रही हैं क्षमा शर्मा

32. मस्तानी सरोवर और तीन नदियों के बीच...

मस्तानी सरोवर और तीन नदियों के बीच के प्रदेश की यात्रा पर नरेंद्र मोहन की डायरी

36. राम-विषयक साहित्य से समृद्ध भारतीय चित्रकला

भारतीय चित्रकला में चित्रित रामचरित के बारे में बता रही हैं अचर्ना रानी

38. रामकथा की चित्रांकन परंपरा : आर्ष रामायण

रामायण पर आधारित चित्रित पुस्तक, 'आर्ष रामायण' के बारे में शिवशंकर त्रिपाठी

42. बस इतना फसाना है !

उर्दू शायर जिगर मुगदावादी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सुनील सोनी 'तपिश'

47. अगम्य हिमखंडों के रहस्य पट खोलने को !

तीसरा सप्तक के कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी के काव्य-संसार की चर्चा बृजबाला सिंह द्वारा

लेखमाला

कीर्ति स्तंभ

4. प्रथम जातीय (राष्ट्रीय) आलोचक : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिंदी साहित्य के आलोकस्तंभ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बारे में बता रहे हैं देवेन्द्र चौबे

दीर्घा

44. शहनाई के जादूगर : उस्ताद बिस्मिल्लाह खां

प्रख्यात शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खां के बारे में बता रहे हैं नसीम साकेती

कविताएं

26. चार कविताएं

गंगा प्रसाद विमल

याचक हूं मैं

27. दो कविताएं

रंजना सक्सेना

नरेश कुमार 'उदास'

28. विकट योद्धा ...

जितेंद्र धीर

29. तीन कविताएं

रुक्म त्रिपाठी

फूल और मुस्कान

बृजभूषण शर्मा

कहानियां

20. जीवन भर का दुख

शैलेंद्र

30. संघर्ष (गुजराती)

ईवा देव

34. पांच लघुकथाएं

कालीचरण प्रेमी

स्तंभ

आवरण II. चार नवगीत — हरिशंकर सक्सेना

आवरण III. छह गुज़लें — कृष्ण शलभ

2. प्रसंगवश

पत्र

हमारे विक्रय केंद्र : नई दिल्ली: मुन्ना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; लखनऊ: गाल नं. 1, दुर्गा मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455; कोलकाता: 8, एम्प्लेनेड ईन्फ, दूरभाष : 33-22484930; पटना: विनय ग. सह. बैंक बिल्डिंग, अक्षय राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407; मुंबई : 701 बी-विंग, मातंगी मंजिल, केंद्रीय सदन वेन्नापुर, नवी मुंबई, दूरभाष : 022-27570686; बंगलौर : एक विंग, केंद्रीय सदन, कोणमगला दूरभाष : 080-25537214; हैदराबाद : ब्लॉक-1, प्रथम मंज, गुरुकुल कॉलेज, एम.जे. मार्ग, नामगल्ला, दूरभाष 3040-23605383; चेन्नई : राजाजी भवन, वेमेट नगर, दूरभाष : 044-24917673, शिवाजीनगरम : गवर्मेन्ट प्रेस कनिकट, दूरभाष : 011-2340650

प्रसंगवश...

मानव सभ्यता और उसकी संस्कृति का व्याख्याता होना बहुत बड़ी बात है। किसी भी जाति की संस्कृति और इतिहास का मूल्यांकन करना इतना सहज नहीं है जितना अक्सर supposed लिया जाता है। परंपरा पर चलना और नई परंपरा बनाना दो एकदम अलग बातें हैं। इसी तरह इतिहास की समीक्षा करने और नया इतिहास रचने में बहुत बड़ा अंतर है। इतिहास निर्माण के लिए हमें कई तरह से कई चीजों का सूक्ष्म और विशद अध्ययन करना पड़ता है। बहुत बारीकी से चीजों की निर्ममतापूर्वक कटाई-छंटाई करनी होती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का बीड़ा उठाया तब सारी चीजें अव्यवस्थित थीं। तमाम साहित्य इधर-उधर बिखरा पड़ा था। कोई पूर्व परंपरा नहीं थी। सब कुछ नए सिरे से करना था और इसके लिए एक तटस्थ और पैनी दृष्टि विकसित करना भी जरूरी था। आचार्य शुक्ल ने ऐसी ही दृष्टि के साथ इधर-उधर बिखरे साहित्य को संकलित और संयोजित किया। उसका विश्लेषण किया और नई दृष्टि से उसकी व्याख्या की। उन्होंने भारतीय और पश्चिमी सौंदर्य शास्त्र को समेकित करके समकालीन तकाजों को पूरा करता हुआ नया काव्यशास्त्र निर्मित किया।

किसी भी क्षेत्र में पुरोधा होने का एक अलग महत्त्व होता है। शुक्ल जी हिंदी साहित्य के इतिहास के पुरोधा रहे। हालांकि उस काल में बाबू श्यामसुंदर दास और लाला भगवानदीन जैसे उद्भट विद्वान भी थे लेकिन हिंदी साहित्य को व्यवस्थित करने का बीड़ा शुक्ल जी ने ही उठाया। संकलन, संपादन, विश्लेषण, मूल्यांकन के साथ अनुवाद का काम करते हुए उन्होंने हिंदी साहित्य और उसके इतिहास को समुचित स्वरूप प्रदान किया। साथ ही साहित्य के मानक और समीक्षा के मानदंड स्थापित किए। उन्होंने हिंदी साहित्य की परंपरा खोजकर उसे विकसित किया।

इतने बड़े काम में कुछ न कुछ कमी रह जाना स्वाभाविक ही है। शुक्ल जी ने जिस परंपरा की नींव डाली उसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आगे बढ़ाया। अगर शुक्ल जी ने तुलसीदास को साहित्य में स्थापित किया तो द्विवेदी जी ने दूसरी परंपरा की खोज करते हुए कबीर को स्थापित करने का काम किया। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि शुक्ल जी ने पहली परंपरा न बनाई होती तो शायद द्विवेदी जी दूसरी परंपरा न बना पाते। हमें यह बात समझनी होगी कि जिस युग में शुक्ल जी हुए और जो स्थितियां और परिस्थितियां उनके सामने थीं, उसी के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन किया। द्विवेदी जी के सामने भिन्न स्थितियां और भिन्न परिस्थितियां रहीं तभी वे दूसरी परंपरा खोज सके।

उत्तर आधुनिकता के इस युग में सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को वैचारिक दृष्टि से देखना संभव हो सकता है किंतु शुक्ल जी के युग में तो आधुनिकता का कोई चिह्न भी नहीं था। न तो नारी-विमर्श जैसी कोई चर्चा थी और न ही दलित-विमर्श जैसे मुद्दे। शुक्ल जी के कृतित्व को उनके युगीन संदर्भ में ही देखना उचित होगा। आज के संदर्भ में उनके कृतित्व को लेकर सवाल खड़े करना न तो उनके साथ न्याय होगा, न ही साहित्य की परंपरा के साथ।

शुक्ल जी को आलोचना के कठघरे में खड़ा करना सरल हो सकता है किंतु युग और परिस्थिति के अनुरूप आचार्य शुक्ल जितना बड़ा काम करना आसान नहीं है। क्या यह श्रेय उन्हें नहीं दिया जाना चाहिए!

पत्र



युगबोध

● जून अंक में विनोद बिहारी लाल, कृष्ण बिहारी लाल और गंगा प्रसाद विमल के लेख रहीम के जीवन, दर्शन और कृतित्व पर सविस्तार प्रकाश डालते हैं, एक अंक में रहीम पर इतनी विस्तृत और ज्ञानवर्द्धक सामग्री देकर आपने पुनीत कार्य किया है। रहीम और उनकी रचनाएं हमारे बीच कितनी प्रासंगिक हैं, यह इन लेखों के पढ़ने से विदित होता है। आज हमारा देश जिस सांप्रदायिक तनाव, हिंसा, आतंकवाद के बीच से गुजर रहा है उसमें रहीम की वाणी और उनकी रचनाएं अपनी सार्थकता बनाए हुए हैं। अब्दुल रहीम खानखाना एक अलौकिक और संस्कारी पुण्यात्मा थे, जो चार सौ वर्ष पूर्व इस धरती पर अवतरित हुए और हमारी तमाम संकीर्णताओं को तोड़ते हुए उन्होंने ज्ञान, धर्म और सद्भाव का रास्ता दिखाया। रहीम संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अद्वितीय प्रेमी और ज्ञानी होने के साथ-साथ उसके महान उन्नायक भी थे। अपने भाषा पांडित्य को उन्होंने जनमानस के बीच बड़े सरल सुबोध और रोचक ढंग से रखा और अपनी रचनाओं में युगबोध प्रस्तुत करके समाज को दिशा दी।

रहीम के दोहे आज भी हमारे जनजीवन में रचे-बसे हैं। सदियां बीत जाएंगी वे विस्मृत होने वाले नहीं।

रहिमन देखि बड़ेन को
लघु न दीजिए डारि
जहां काम आए सुई
काह करे तरवारि।

जैसे दोहे हमारी जुबान पर हमेशा रहते हैं। विपिन बिहारी लाल के लेख में एक दोहे में मृगराज छपा है जो कि गजराज होना चाहिए दोहा है—धूल धरत निज सीस पे, कह रहीम कह काज। जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो दूंदत गजराज।

आधुनिक हिंदी कविता के परिदृश्य में कवि नेपाली का आगमन सचमुच एक विलक्षण घटना है। वह अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हमें चमत्कृत करते हैं। नेपाली जी पर नंद किशोर नंदन का लेख ज्ञानवर्द्धक है। नवगीतकार नईम पर भारतेन्दु मिश्र की श्रद्धांजलि भावप्रवण और संवेदनशील है। मैत्रेयी पुष्पा से वैशाली श्रीवास्तव का साक्षात्कार पुष्पा जी के कथा लेखन पर सविस्तार प्रकाश डालता है।

—आनंद स्वरूप श्रीवास्तव, रायबरेली

दायित्व का निर्वाह

● 'आज का एकलव्य' (लघुकथा: निर्मला सिंह) अवसरवादिता के दुष्परिणाम से घिरा है। आंतरिक लय में वह आम आदमी की सोच से ऊपर नहीं उठ सका है। 'हमारे परदादा शुद्ध घी से बनी चीजें ही खाया करते थे, विश्वास नहीं होता तो मेरा हाथ सूँघ

कर देख लो' वाली उक्ति को चरितार्थ करती है महीप सिंह की कहानी 'वंशज'। रमानाथ राय की वांग्ला कहानी 'निर्मोजने का कमरा' (अनुवाद : अमर गोस्वामी) बदलती हवा में बुढ़ापे के अकेले-निकम्मेपन की कड़वाहट को व्यक्त करती है।

जन-जन की वाणी के गायक 'गोपाल सिंह नेपाली' को कीर्ति-स्तंभ में स्थान देकर आपने अपने दायित्व का सही निर्वहण किया है। नंद किशोर नंदन ने इस आलेख के माध्यम से नेपाली जी के कृतित्व और व्यक्तित्व से हमें रू-वरू कराया है। उनका स्वाभिमान, देश-प्रेम एवं देशवासियों से अटूट लगाव कभी विस्मृत नहीं किए जा सकते। मैत्रेयी पुष्पा से वैशाली श्रीवास्तव की बातचीत नारी अस्मिता को न केवल ऊंचाई प्रदान करती है बल्कि नारी के प्रति पुरुष की जंग लगी सोच को तर्क के हथौड़े से चोट काटके दूर करने की सफल कोशिश भी करती है। वेद प्रकाश का 'विप्लवी पुस्तकालय: एक अनोखा अनुभव' काफी दिलचस्प लगा।

विनोद बिहारी लाल और कृष्ण बिहारी लाल की मध्यकालीन कवि रहीम के बारे में प्रमृत्तियां एवं पुस्तक चर्चा में गंगा प्रसाद विमल को 'खानखाना अब्दुरहीम और संस्कृति' की समीक्षा ने रहीम के व्यक्तित्व और कृतित्व को गरिमा प्रदान की है। 'न होना नईम का' में नवगीत के अनुपम चित्रों के प्रति भास्कर मिश्र की भावपूर्ण थ्रिलरजनि मन को छूती है। संगीता राय ने 'पारसी थियेटर की प्रतिभा: आगा हश्व काश्मीरी'

के बारे में बहुत-कुछ बताया है। माजदा असद ने 'भक्ति काव्य और उर्दू शायरी' के बहाने अनूठी जानकारी दी है। 'कालिदास के काव्य में अरण्य संस्कृति', 'भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण' एवं ललित निबंध 'सांस्कृतिक अवनति और पर्यावरण ह्रास' में अतीत और वर्तमान के सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय फर्क को रेखांकित किया गया है।

नचिकेता, देवेन्द्र आर्य, शांति सुमन एवं बालकृष्ण मिश्र के गीत मन को बांधे रखते हैं। ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी', जगपाल सिंह 'सरोज' एवं सत्यपाल मल्होत्रा की कविताएं पठनीय हैं। 'प्रसंगवश' में आपने अंत में रहीम का दोहा उद्धृत कर जो चेतावनी दी है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

—राधेलाल 'नवचक्र', भागलपुर

बेबाक सवाल-जबाब

● दादूराम शर्मा का लेख 'कालिदास के काव्य में अरण्य संस्कृति' बहुत अच्छा बन पड़ा है। पर्यावरण केंद्रित रचनाएं (शेफाली शर्मा एवं सुनील अग्रवाल) भी बहुत महत्वपूर्ण व ज्ञानवर्धक लगे। कथाकार मैत्रेयी पुष्पा से वैशाली की बातचीत इस अंक की उपलब्धि है। वैशाली ने जितनी बेबाकी से सवाल रखे हैं, मैत्रेयी जी ने उसी बेबाकी से उनके जवाब दिए हैं। सब कुछ साफ-साफ खोलकर रख दिया दुनिया के सामने।

माजदा असद ने 'भक्ति काव्य और उर्दू शायरी' अच्छा लेख लिखा है। उन्होंने मुल्ला दाऊद का स्मरण किया है, जो इलमऊ (रायबरेली) में

जन्म प्रसिद्ध सूफी संत कवि थे। रहीम के काव्य संसार से परिचय कराते विनोद बिहारी लाल एवं कृष्ण बिहारी लाल के आलेख भी अच्छे ढंग से उनकी विवेचना करते हैं। हिंदी कविता संसार को नईम का जाना बहुत खला। वह एक महत्वपूर्ण गीतकार थे, उनकी स्मृति को प्रणाम! 'विप्लवी पुस्तकालय' वेद प्रकाश जी का शोधपूर्ण खोजी आलेख है कीर्ति स्तंभ के अंतर्गत नंद किशोर नंदन ने गोपाल सिंह नेपाली पर उत्कृष्ट लेख लिखा है। यह एक महत्वपूर्ण गीतकार थे जिन्हें लोग भूलते चले जा रहे हैं। उनकी याद जरूरी थी। अंक में नचिकेता, बालकृष्ण मिश्र, शांति सुमन के गीत बहुत पसंद आए। महीप सिंह एवं रमानाथ राय की कहानियां भी अंक के अनुकूल हैं। ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी', जगपाल सिंह 'सरोज' एवं सत्यपाल मल्होत्रा की रचनाएं भी अच्छी हैं। पुस्तकों की समीक्षाएं अच्छे ढंग से लिखी गई हैं।

—वाई. वेदप्रकाश, इलाहाबाद

खोजपूर्ण आलेख

● जन-जन की वाणी के गायक गोपाल सिंह नेपाली पर आलेख काफी खोजपूर्ण एवं संग्रहणीय है। नेपाली काव्य की संपूर्ण विडंबनाओं, अंतर्द्वंद्वों एवं खूबियों का जिक्र नंद किशोर नंदन ने यड़ी बारीकी से किया है। मैत्रेयी पुष्पा से वैशाली श्रीवास्तव की बातचीत उनकी उपन्यास विधा एवं रचनात्मक अच्छाइयों तथा कमियों की ओर इंगित करने में सक्षम है। समकालीन लेखिकाएं महिला लेखन से किस

तरह जुड़ी हैं, उसकी उड़ताल भी हो जाती है।

महीप सिंह की कहानी 'वंशज' आज की राजनीति एवं उससे उपजी दुरवस्थाओं की पोल खोलती है। शैदी, सरोज, सत्यपाल और नचिकेता तथा शांति सुमन के गीत व कविताएं काफी अच्छी हैं। 'सांस्कृतिक समन्वय के गायक रहीम' आलेख पठनीय है।

—रुलाधर, पूर्णिया

नई भंगिमा के गीत

● गोपाल सिंह नेपाली और नईम को आपने बहुत सलीके से स्मरण किया है। रहीम पर केंद्रित आलेख भी महत्वपूर्ण है। अगा हश्व कश्मीरी पर सामग्री जानकारी बढ़ाने वाली है। नचिकेता, शांति सुमन की रचनाएं गीत की नई भंगिमाओं से परिचित कराती हैं।

—वेद प्रकाश अमिताभ, अलीगढ़

अग्रदूत

● पत्रिका का तेवर पूर्व की भांति कल्पना, प्रेरणा और साहित्यिक अवधारणा से लवालब मिला। इसे अगर साहित्य और संस्कृति का जायजमान संवाहक एवं अग्रदूत कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। ताहि अहीर की छोटियां छछिया, भर छाछ पर नाच नचावै 'सदृश' लगा। 'रहीम' एक अप्रतिम ज्योति स्तंभ विनोद बिहारी लाल; जन-जन की वाणी के गायक-गोपाल सिंह नेपाली नंद किशोर नंदन; 'कालिदास के काव्य में अरण्य संस्कृति' दादूराम शर्मा लेख उत्कृष्ट हैं।

—रामेश्वर प्रसाद सिंह, पटना

पृष्ठ 51 पर जारी

प्रथम जातीय (राष्ट्रीय) आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल

अगर आचार्य शुक्ल नहीं होते तो काव्यशास्त्र, खासकर रस सिद्धांत की इतनी तार्किक, समकालीन प्रासंगिक और समाज-सापेक्ष व्याख्या और स्थापना नहीं होती। खास बात यह है कि हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने के लिए उन्होंने अनेक ऐसी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया, जिनकी जरूरत हिंदी समाज को थी। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन अनूदित पुस्तकों की उन्होंने लंबी भूमिकाएं लिखीं तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उनके महत्त्व को पाठकों के सामने रखा। उन्हें जातीय जिंदगी के लिए जरूरी भी बताया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह सब किया; तब जब हिंदी भाषा और साहित्य का स्वरूप अभी बन ही रहा था। उन्होंने हिंदी में इतिहास की समझ विकसित की, कविता को जातीय जिंदगी के दस्तावेज के रूप में रखा और वैचारिक लेखों के माध्यम से हिंदी में सैद्धांतिक आलोचना की बुनियाद रखते हुए उसका विस्तार किया। इसीलिए वह आज भी हिंदी साहित्य और विचारधारा की दुनिया में एक बड़े आलोचक के रूप में स्थापित हैं। हिंदी साहित्य के आलोकस्तंभ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्त्व के बारे में बता रहे हैं देवेंद्र चौबे

रामचंद्र शुक्ल का जन्म 4 अक्टूबर 1884 को अगोना बस्ती (उ.प्र.) में हुआ और निधन 2 फरवरी 1941 को। वह हिंदी के पहले व्यवस्थित आलोचक थे। साहित्य में उपस्थित जातीय (राष्ट्रीय) जीवन की खोज, व्याख्या और स्थापित करने की पहल प्राथमिक तौर पर जिन आलोचकों ने की, उनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल का सर्वाधिक महत्त्व है। यद्यपि उनके पूर्व भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' निबंध में रचना की जरूरत पर बात करते हुए उसे जातीय (राष्ट्रीय) और सामाजिक संदर्भों से जोड़ने पर बल दिया था, जिसे आगे बढ़ाते हुए वाद में बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' और 'सच्ची समालोचना' नामक निबंधों में साहित्य में 'जनसमूह' से जोड़ते हुए, साफ-साफ कहा कि 'साहित्य को यदि जनसमूह (Nation) के चित्र का चित्रपट कहा जाए तो संगत है' अर्थात् रचना सिर्फ मनुष्य के भावों और विचारों का ही नहीं, बल्कि जनसमूह के देशीय चरित्र का 'चित्रपट' भी है। वह 'चित्रपट' जिसमें किसी भी देश का समाज, उसकी संस्कृति, लोग-बाग, जाणी-विचार एवं उसकी समान चिंताएं गहरे राष्ट्रीय बोध के साथ प्रकट होती हैं। यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल का पहला आलोचनात्मक लेख 'साहित्य' सरस्वती में 1904 ई. में प्रकाशित हो गया था एवं अन्य पुस्तकें क्रमशः गोस्वामी तुलसीदास (1923) जायसी ग्रंथावली (1924), भ्रमरगीत सार (1925), हिंदी साहित्य का इतिहास (1929), चिंतामणि तथा रस मीमांसा उनके निधन के बाद 1949 में पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के संपादन में प्रकाशित हुए। परंतु उनकी चिंतन प्रक्रिया में वैश्विक चिंतन के समानांतर देशीय चिंतन को महत्त्व देने की बात बार-बार दिखाई पड़ती है। सरस्वती के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी साहित्य को ज्ञानराशि का 'संचित कोश' मानते हुए कानपुर वाले बक्तव्य में स्पष्टतः कहा था कि 'जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी ठीक वैसा ही होता है।' जाहिर है, यह 'जाति' भारतीय समाज की वर्ण एवं जाति व्यवस्था केंद्रित सामाजिक संरचना की शब्दावली नहीं है, बल्कि उसका सीधा संबंध 1857 के बाद हिंदी विचार की दुनिया में 'राष्ट्र (Nation)' को लेकर बन रही वैचारिक निर्मितियों से है, जिसे कुछ घोर परंपरावादी वि-उपनिवेश मन (De-Colonialised Mind) भी कहते हैं, पर आचार्य शुक्ल के यहां 'जाति' राष्ट्र की गतिशील सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया में शामिल होती है। और जाहिर है, 1857 से 1947 के बीच निर्मित यह शब्दावली (जिसमें हम जातीय मानकर चल रहे हैं) राष्ट्र मुक्ति एवं भारतीय चिंतन की परंपरा से भी सीधी टकराती और संवाद करती है।

सवाल है, इस पूरे प्रसंग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का क्या महत्त्व है? साहित्य और विचार की दुनिया में वे ऐसे किन सवालों को लेकर खड़े होते हैं, जिनका विकल्प—अगर हम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को छोड़ दें, तो—आज भी हिंदी की वैचारिक दुनिया में कोई दिखाई नहीं पड़ता है? और यदि हम डा. नगेंद्र, रामविलास शर्मा, नलिन विलोचन शर्मा, नामवर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, नंददुलारे वाजपेयी, विजयदेव नारायण साही, मुक्तिबोध, मलयज, देवेंद्र नाथ शर्मा एवं इधर के आलोचकों में वच्चन सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी, शिवकुमार मिश्र, निर्मला जैन, मैनेजर पांडेय, रमेश कुंतल मेघ, प्रदीप सक्सेना, नंदकिशोर नवल, अजय तिवारी, सुमन राजे आदि को उनके विकल्प के रूप में खड़ा करना चाहें तो उनमें से रामविलास शर्मा, नगेंद्र, मुक्तिबोध, नलिन विलोचन शर्मा, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय आदि के अलावा कोई नहीं ठहरता है और उसमें भी ये सभी आलोचक, रामचंद्र शुक्ल की तुलना में मौलिक स्तर पर कम, व्यावहारिक स्तर पर उनके विचारों की व्याख्या करते अधिक नजर आते

डा. देवेंद्र चौबे सुविख्यात लेखक हैं।

हैं। खासकर, हिंदी का अकादमिक जगत रचना एवं विचार की व्याख्या के स्तर पर आज भी आचार्य शुक्ल के चिंतन से मुक्त नहीं हो पाया है चाहे वह 'कविता' की अवधारणा की बात हो अथवा किसी कविता की व्याख्या का सवाल या काव्यशास्त्र को पुनः रचने एवं साहित्य के इतिहास को समझने का मसला— आचार्य रामचंद्र शुक्ल विचारधारा की दुनिया में व्याख्याकारों के सामने तनकर खड़े हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, यह आचार्य शुक्ल का ही लेखन और हिंदी पाठ्यक्रम का ढांचा है कि 'भक्तिकाल' आज भी साहित्य के स्वर्णकाल के रूप में स्थापित एवं समकालीन विचार-विमर्श के केंद्र में बना हुआ है। फर्क इतना पड़ा है कि तुलसी की जगह कबीर ने और उसके बाद, धीरे-धीरे यह जगह, स्त्री विमर्श के कारण मीराबाई ने ले ली (या लेती जा रही है)। पिछले एक-दो दशकों में, खासकर 1990 में लागू मंडल कमीशन के बाद हिंदी पढ़ी में दलित सवालों पर हुई बहसों में तेजी आई तो प्रसिद्ध दलित चिंतक धर्मवीर ने 'कबीर के आलोचक' के बहाने ही हिंदी आलोचकों पर सबसे अधिक हमले किए।

कबीर, यानी हिंदी साहित्य का मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल; वह भक्तिकाल जिसे आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के स्वर्णकाल के रूप में स्थापित किया एवं तुलसीदास को जनता के सबसे बड़े कवि के रूप में व्यापक बनाया। ठीक उसी प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को। उन्हीं कबीर के बहाने धर्मवीर ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि हिंदी की वैचारिक दुनिया पूर्वाग्रह (सर्वण मानसिकता) से ग्रसित है। उसे कबीर की सामाजिकता एवं वैचारिकता नहीं, सधुक्कड़ी (खिचड़ी) भाषा दिखाई पड़ती है। वह भाषा, जो जनता के करीब है। सामान्य शब्दों में कहें तो, लगभग भोजपुरी है जिसकी तरफ पटना में दिए गए एक व्याख्यान में प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक मैनेजर पांडेय ने संकेत किया था। पर न तो आचार्य शुक्ल ने कबीर की भाषा के इस रूप को पहचानने का प्रयास किया और न ही वाद के आलोचकों ने। पर यह सच है कि कबीर पर हुई बहसों ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बहाने हिंदी में परंपरा संबंधी बहसों को अवधारणात्मक स्तर पर स्थापित किया। वैष्णव और शैव (या वैष्णवेंतर) दर्शन से जुड़ी इन बहसों ने हिंदी में पहली परंपरा (तुलसी) एवं दूसरी परंपरा (कबीर) के बहाने आचार्य शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को तो स्थापित किया ही, साथ-ही-साथ रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे आधुनिक (मार्क्सवादी) आलोचकों को भी इन वैचारिक असहमतियों एवं संघर्षों के बहाने भारतीय परंपराओं (वैष्णव, शैव, बौद्ध आदि) से टकराने के लिए बाध्य किया। परिणाम यह हुआ कि हिंदी की वैचारिक दुनिया दो खेमों में बंट गई— शुक्ल बनाम द्विवेदी; रामविलास शर्मा बनाम नामवर सिंह। फल यह हुआ कि एक ऐसे रेफरी की जरूरत थी, जो दोनों धाराओं के बीच संवाद स्थापित कर सके। एक हद तक मैनेजर पांडेय ने यह भूमिका निभाई तथा सूरदास एवं मीराबाई (विशेषकर सूरदास) के बहाने परंपरा एवं आधुनिकता के बीच संवाद करने की कोशिश की। सूर के साहित्य को कृपक समाज से जोड़ना



कीर्ति-स्तंभ लेखमाला में अब तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानंदन पंत, अमृतलाल नागर, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुभद्रा कुमारी चौहान, पृथ्वीराज कपूर, हरिवंशराय बच्चन, भवेशचंद्र सान्याल, विष्णु दिगंबर पलुस्कर, मैथिलीशरण गुप्त, यशपाल, दिनकर, धूमिल, देवेंद्र सत्यार्थी, विमल राय, उस्ताद अलाउद्दीन खां, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, गुरुदत्त, गोपाल सिंह नेपाली, विष्णु प्रभाकर, अमृता शेरगिल और राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व व कृतित्व का परिचय दिया जा चुका है। इस बार के व्यक्तित्व हैं हिंदी आलोचना के भीष्म पितामह आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिंदी साहित्य, कला और संस्कृति ने प्रगति और विकास के जो सोपान तय किए हैं उसके मूल में चिंतकों, मनीषियों, साहित्यकारों और विविध कला-विधाओं से जुड़े संस्कृतिकर्मियों का अमूल्य योगदान रहा है। इन क्षेत्रों में ऐसे अनेक मूर्धन्य साहित्यकार और कलाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी तरह से साहित्य और कला के नए मानदंड स्थापित किए। इन महापुरुषों ने अपनी-अपनी विधाओं में ऐसे मानक प्रस्तुत किए, जो नए रचनाकारों और कला-संस्कृति के क्षेत्र के नए यात्रियों के लिए निकष भी हैं और प्रेरणा-स्रोत भी। कीर्ति-स्तंभ लेखमाला साहित्य, चित्रकला, संगीत, स्थापत्य कला, फिल्म और रंगमंच आदि क्षेत्रों के इन महान साहित्यकारों, कलाकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर प्रकाशित की जा रही है।

उनकी इसी कोशिश का नतीजा है। लेकिन यह सच है कि इन बहसों एवं विवादों से हिंदी आलोचना को विस्तार मिला। इसके साथ ही एक दूसरी सच्चाई यह भी है कि यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' को हिंदी साहित्य के केंद्र में खड़ा नहीं किया होता तो हिंदी आलोचना को वैचारिक स्तर पर यह ऊंचाई नहीं मिलती।

ज्ञान, भक्ति और कर्म के बहाने उन्होंने लोकधर्म का एक ढांचा खड़ा किया तथा 'कविता' के लिए इन तीनों के बीच सामंजस्य होना जरूरी बताया। अर्थात् लोक का मंगल वही रचना (कविता) कर सकती है जिसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म का समावेश हो। तुलसी के *मानस* में उन्हें इन तीनों का समावेश दिखाई पड़ता है। इसीलिए उन्होंने तुलसी को हिंदी का सबसे बड़ा कवि और *रामचरित मानस* को एक महान रचना बताया। कबीर में उन्हें 'भक्ति' का अभाव दिखा, इसीलिए उन्हें न तो कबीर की कविता अच्छी लगी और न ही उनका ज्ञान। कहा जा सकता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भक्तिकाल संबंधी इन स्थापनाओं और भक्तिकालीन कविता का वर्गीकरण (जैसे ज्ञानश्रयी एवं प्रेममार्गी शाखा के अंदर निर्गुण धारा, राम भक्ति शाखा एवं कृष्ण-भक्ति शाखा के अंदर सगुण धारा या सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति, कबीर का रहस्यवाद, कबीर का निर्गुण पंथ आदि) ने हिंदी आलोचना को गतिशील बनाया। उदाहरण के लिए, निर्गुण पंथ के संबंध में उनके इस कथन ने हिंदी आलोचना में सबसे अधिक खलबली मचाई कि 'इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बौद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।' यद्यपि, उन्होंने इस कथन के ठीक बाद यह भी कहा कि 'पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन संत-महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है।' (*हिंदी साहित्य का इतिहास*, पृष्ठ 50)

कहा जाता है कि सी अच्छाड़ियों पर एक बुराई भारी पड़ती है। आज आचार्य शुक्ल पर सबसे अधिक हमले, उनके तुलसीदास एवं उनके मानस समर्थक होने के कारण हो रहे हैं। लोगों का लगता है कि वर्ण एवं जाति केंद्रित सामाजिक एवं रचना के मूल्यांकन में उनका हिंदूवादी नजरिया झलकता है। उनकी दृष्टि में वह ब्राह्मणवाद के पोषक हैं।

इस प्रसंग में दो बातें। एक— जहां तक साहित्य का इतिहास एवं रचना के मूल्यांकन का सवाल है, उसे समय एवं समाज से काटकर नहीं देखा जा सकता। भक्तिकाल के तीनों कवियों पर आचार्य शुक्ल ने 1923 से 1925 के बीच लिखा। साहित्य का इतिहास 1929 में। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में उन्होंने 1919 में पढ़ाना शुरू किया। विचार कीजिए, उस समय हिंदी में ऐसा क्या था, जो छात्रों को वह पढ़ाते? 1857 के बाद के साहित्य को देखें तो उनके सामने भारतेन्दु हरिश्चंद्र की रचनाएं, लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु', बालकृष्ण भट्ट की रचनाएं, देवकीनंदन खत्री के उपन्यास, प्रतापनारायण मिश्र, नजीर अकबरवादी, अयोध्या प्रसाद खत्री, ठाकुर जगमोहन सिंह, बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, पं. रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मिश्रबंधु, मैथिलीशरण गुप्त, श्यामनारायण पांडेय, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा आदि की रचनाएं थीं। उसके पूर्व फोर्ट विलियम कालेज के चारों गद्यकारों (मुंशी सदासुखलाल 'नियोज', ईशा अल्ला खां, लल्लू लाल जी और सदन मिश्र) द्वारा रचा गया प्रारंभिक गद्य। उसके अलावा पं. जुगलकिशोर शुक्ल का 1826 में प्रकाशित अखबार उदंत *मार्तंड* एवं राजा शिवप्रसाद सिंह

सितारे हिंद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की कृतियां और उस जमाने की भाषा संबंधी बहसें। साथ ही, 5 दिसंबर 1852 को हिंदी-उर्दू भाषा के संबंध में गार्सा द तासी का दिया गया व्याख्यान, उनके द्वारा लिखित *हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास* (1840) आदि। और इसी क्रम में उनका सर सैयद अहमद की तारीफ करते हुए हिंदी के बारे में दिया गया यह बयान कि 'इस वक्त हिंदी की हैसियत भी एक बोली (डायलेक्ट) की-सी रह गई है, जो हर गांव में, अलग-अलग ढंग से बोली जाती है।' इसके अलावा खड़ी बोली की कुछ छिटपुट रचनाएं। मुश्किल से अगर कोई खड़ी बोली की इन रचनाओं का हिंदी पाठ्यक्रम का ढांचा खड़ा करता तो वह सौ वर्ष का होता। पर सबसे कठिन होता उन्हें केंद्रीय सूत्र में बांधना जिनके सहारे किसी भी भाषा अथवा साहित्य की अस्मिता बनती है।

पर जिसे हम जातीय (राष्ट्रीय) जिंदगी कहते हैं या जो संरचना देशीय चरित्र खड़ा करती है, वह भारत (हिंदुस्तान) के प्रसंग में देखा जाए तो 1857 के बाद भारतेन्दु से बननी शुरू होती है। इस नाते आचार्य शुक्ल के सामने हिंदी का जो ढांचा खड़ा करने की चुनौती और समय मिलता है वह महज 1873 (जब *कालचक्र* में भारतेन्दु इस बात को चिह्नित करते हैं कि 'हिंदी नई चाल में दली') से 1919 यानी कि 46 वर्ष का ठहरता है। परंतु इस कालावधि में वह राष्ट्रीय जिंदगी नहीं दिखाई पड़ती, जो भाषा अथवा साहित्य के माध्यम से निर्मित होती है। भारतेन्दु के अलावा वह बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त में एक हद तक दिखाई पड़ती है। शायद यही कारण है कि भारत की जातीय (राष्ट्रीय) जिंदगी को दिखाने और स्थापित करने के लिए ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल *हिंदी साहित्य का इतिहास* चंदवरदाई, विद्यापति एवं अमीर खुसरो से शुरू करते हैं तथा तुलसी, सूर, कबीर, जायसी, मीराबाई, घनानंद, बिहारी, केशव, मतिराम आदि से होते हुए भारतेन्दु तक लाते हैं।

यद्यपि इस ढांचे में भी असंगतियां हैं क्योंकि विद्यापति के बाद उनके इतिहास में न तो मैथिली का कोई कवि मध्यकाल (भक्ति, रीति) में शामिल है और न ही आधुनिक काल में। इसी प्रकार राजस्थानी अथवा अवधी या ब्रज के किसी कवि को वह 1900 के बाद के इतिहास लेखन में शामिल नहीं करते हैं। ये उनके इतिहास लेखन की वही असंगतियां हैं जिन पर बाद के इतिहासकारों ने भी ध्यान नहीं दिया। हां, शिवदान सिंह चौहान ने जरूर *हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष* में ऐसे अंतर्विरोधों की तरफ ध्यान खींचा; पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 1919 में जो आदमी साहित्य और उसके इतिहास का ढांचा खड़ा कर रहा था, उसके लिए सबसे अधिक जरूरी बात यह थी कि वह साहित्य का ऐसा कौन-सा रूप निर्धारित करे कि वह साहित्य उस राष्ट्र की जातीय जिंदगी (National life) की पहचान बन सके। तुलसीदास के *मानस* के अंदर उन्हें इस जातीय जिंदगी की पूरी संरचना नजर आती है। एक हद तक जायसी के *पद्मावत* और सूर की रचनाओं (*सूरसागर*, *सूरसागर सारावली*, आदि) में भी। भारतीय परंपरा में ज्ञान और व्यवहार के साथ उसके संबंध का जो इतिहास है, उस दृष्टि से आचार्य शुक्ल को *सूरसागर* का सबसे अधिक मर्मस्पर्शी और वाग्वेदगुह्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' लगता है, जहां उद्धव के निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योग कथा को गोपियां 'प्रेम' के सामने निरर्थक बताती हैं— ऊधो! तुम अपनी जतन करो। हित की कहत कुहित की लायै, किन बेकाज ररी? जाय करी उपचार आपनो, हम जो कहति हैं जी की? कसू कहत केडुवै कहि डारत, धुन देखियत नहिं नीकी। अथवा निर्गुन कौन देस को वासी? मधुकर हंसि समुझाय, सौहैं दैं बूझति सांच, न हांसी।

इन पंक्तियों की चर्चा और इनके बहाने भारतीय ज्ञान परंपरा का व्यावहारिक जीवन में जो महत्व है— उसकी व्याख्या करने हुए आचार्य शुक्ल इतना मुग्ध हो जाते हैं कि वह देखते ही बनता है। पर यह मुग्धता असीम में

खोने की नहीं है, बल्कि उसके सहारे जिंदगी के यथार्थ को समझने की बात है कि कभी-कभी 'ज्ञान' और 'दर्शन' भी 'मन' को संतुलित बनाने में असफल होते हैं। गोपियों की शब्दावली अपनाते हुए आचार्य शुक्ल स्वयं सवाल खड़ा कर देते हैं— 'उस निर्गुण और अव्यक्त का मानव हृदय के साथ भी कोई संबंध हो सकता है, यह तो बताओ...' अर्थात् कई बार आलोचक का काम 'ज्ञान' एवं 'दर्शन' के सहारे नहीं, बल्कि रचना में मौजूद उस सामान्य भाव (जैसे—प्रेम) के आधार पर चलता है जिससे मानव हृदय का विस्तार होता है और वह जातीय जिंदगी का अहम हिस्सा बन जाती है। आज भी गोपियों और कृष्ण का प्रेम समाज के लिए आदर्श का विषय बना हुआ है और कहीं-न-कहीं राधा-कृष्ण भारत की जातीय जिंदगी का अहम हिस्सा बने हुए हैं। इसी प्रकार वीरगाथा (काव्य) के बहाने 'देशभाषा काव्य' (पश्चिम) और विद्यापति के बहाने आचार्य शुक्ल 'पूरब' की जिंदगी का जो यथार्थ रखते हैं, वह हमारी जातीय जिंदगी का ही एक शास्त्र रचता है।

दरअसल आलोचक की यह भूमिका भी होती है कि वह रचनाओं में मौजूद जातीय जिंदगी और उसके भिन्न-भिन्न रूपों की खोज करे, उनकी व्याख्या करे और उन्हें स्थापित भी करे। इतना ही नहीं, इतिहास में उनकी जगह निर्धारित करे ताकि वह राष्ट्रीय धारा का अहम हिस्सा बन सकें। इसीलिए आज भी रवींद्रनाथ टैगोर बंगाल की जातीय जिंदगी का हिस्सा बने हुए हैं और प्रेमचंद उत्तर भारत के किसानों की जिंदगी का; विद्यापति मिथिलांचल (उत्तर बिहार) का हिस्सा बने हुए हैं तो भिखारी ठाकुर भोजपुरी समाज का सामाजिक इतिहास बनाते नजर आते हैं। तुलसीदास, सूरदास, जायसी और कबीर मध्यकालीन जिंदगी का ताना-बाना रचते दिखाई पड़ते हैं तो केशव, मतिराम, बिहारी, घनानंद आदि उनकी दृष्टि में उत्तर मध्यकाल का सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार निर्मित करते नजर आते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आचार्य शुक्ल इन लेखकों, कवियों का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन ही नहीं करते हैं; बल्कि इन लेखकों के साहित्य में मौजूद, भारत की जातीय जिंदगी की पहचान करने भी नजर आते हैं जिससे भारतीय परंपराएं निर्मित होती हैं और इसीलिए कोई कवि या आलोचक पाश्चात्य चरम के सहारे इस जातीय जिंदगी को तोड़ने या कोई बाहरी चीजें थोपने की कोशिश करता है, तब आचार्य शुक्ल हाथ में मोटी लाठी लेकर खड़े हो जाते हैं। ऐसे सर्माक्षकों के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा है—

'ठाक-ठकाने से चलने वाली समीक्षाओं को देखकर जितना संतोप होता है, किसी कवि की समीक्षा के नाम पर उसकी रचना से सर्वथा असंबद्ध चित्रमयी कल्पना और भावुकता की सजावट देखकर उतनी ही ग्लानि होती है। यह सजावट अंग्रेजी के अथवा बंगला के समीक्षा क्षेत्र से कुछ विचित्र, कुछ विदग्ध, कुछ अतिरंजित चलते शब्द और वाक्य ला-लाकर खड़ी की जाती है। कहीं-कहीं तो किसी अंग्रेजी कवि के संबंध में की हुई समीक्षा का कोई खंड ज्यों-का त्यों उठाकर किसी हिंदी कवि पर भिड़ा दिया जाता है। ऊपरी रंग-रंग से तो ऐसा जान पड़ेगा कि कवि के हृदय के भीतर सेंध लगाकर घुसे हैं और बड़े-बड़े गूढ़ कोने झांक रहे हैं, पर कवि के उद्धृत पद्यों से मिलान कीजिए तो पता चलेगा कि कवि के विविध भावों से उनके वाग्विलास का कोई लगाव नहीं। पद्य का आशय या भाव कुछ और है, आलोचक जी उसे उद्धृत करके कुछ और ही राग अलाप रहे हैं।' (हिंदी साहित्य का इतिहास; पृ. 383)

अपने समय की आलोचना और आलोचक के बारे में ऐसे तीखी टिप्पणी कम ही देखने को मिलती है। ऐसा साहस कम आलोचक दिखाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ऐसा करते हैं। इसलिए उन्हें हिंदी का सबसे ताकतवर आलोचक

कहा जाता है। इतिहास की अंतर्धारा को पहचानते हुए उसे समकालीन विमर्शों से जोड़ना तथा फिर उसकी जगह तय करना— एक दुःसाध्य कार्य है। आचार्य शुक्ल को पढ़ते हुए बार-बार इस बात का अहसास होता है कि वह सचेत होकर साहित्य एवं विचार की दुनिया में विचरण करते हैं और जहां जरूरत पड़ती है, वहां विरोधियों एवं पाश्चात्य चरम वालों के साथ ही, क्रोचे, टालस्टाय, फ्रायड जैसे उनके आकाओं तथा विचारों से मुठभेड़ भी करते हैं। यह साहित्य के इतिहासकार के लिए जरूरी भी है कि वह साहित्य और विचारधारा की दुनिया से टकराते हुए उसकी उपस्थिति का आकलन करता है।

यह तो रही इतिहास की बात। जहां तक उनके ब्राह्मणवादी अथवा वर्ण एवं जाति केंद्रित सामाजिक व्यवस्था के समर्थक होने का सवाल है, इस बारे में उनके कुछ और लेखन को भी देखना जरूरी है। खासकर, उनके सैद्धांतिक और समाज से जुड़े मुद्दों को लेकर उन पर पुनर्विचार की जरूरत है। यह सच है कि वह तुलसीदास और उनके मानस के समर्थक हैं। चिंतनगणि और हिंदी साहित्य का इतिहास में उनका तुलसीदास का समर्थक होना साफ-साफ दिखाई पड़ता है। लेकिन तुलसी की लोकप्रियता सिर्फ आचार्य शुक्ल के कारण नहीं है। उनके पूर्व अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने मध्यकालीन भारतीय एवं हिंदी साहित्य पर कार्य किया है तथा उसके 'हिंदी के भक्त कवि और कविता' महत्त्व को स्थापित भी किया है। मैक्समूलर, दारा शिकोह, जार्ज ग्रियर्सन जैसे अनेक विद्वान हैं जिन्होंने भारतीय परंपराओं की महत्ता स्थापित की है। मॉरीशस, सूरीनाम, डरबन, अफ्रीका, फीजी, त्रिनिदाद आदि देशों में मजदूर के रूप में गए लोगों के हाथों में मानस या भगवद्गीता की ही प्रतियां हुआ करती थीं। यहां तक कि लोग तुलसी कृत हनुमान चालीसा लेकर गए तथा हिंदी शिक्षा के नाम पर देशों में इन्हें ही पढ़ाया गया। जापान, हंगरी, रूस, चीन आदि देशों में भी मानस एक पाठ्य ग्रंथ है।

आचार्य शुक्ल ने बस इतना किया कि तुलसीदास और उनके मानस को हिंदी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया। इसे छात्रों और शिक्षित समाज के बीच लोकप्रिय किया। वह मानस, जो सिर्फ रामकथा के रूप में धर्म के प्रचार का एक अहम हिस्सा था, अकादमिक जगत से जोड़कर उसे तर्क की कसीटी पर कसा; उसके प्रति समझ विकसित करने के लिए शास्त्र रचा; मूल्यांकन की पद्धति विकसित की। भारतीय काव्यशास्त्र में से रस सिद्धांत को चुनना और फिर उस पर रस मीमांसा जैसी सैद्धांतिक कृति की रचना करना— उनके साहित्यशास्त्र का एक अहम हिस्सा है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने उसको समकालीन और प्रासंगिक बनाया तथा उसे सहृदय शिक्षित समाज से जोड़ा। उसमें (भाव) अनुभूति के संश्लिष्ट होने की बात कहकर रस की पूरी प्रक्रिया को 'लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम' बताया। मानस इसलिए महत्वपूर्ण रचना है कि वह लोक का अंग बन चुकी है।

यहां इस बात का उल्लेख करना अनावश्यक नहीं होगा कि उन्होंने तुलसी के साथ-साथ सूरदास और जायसी को भी शिक्षण की प्रक्रिया से जोड़ा तथा बाद में अकादमिक जगत में इन कृतियों को उतना ही महत्त्व मिला, जितना कि मानस को। हां, यह फर्क जरूर है कि मानस की व्याख्या में उनका मन रमा। उन्हें लगता है कि मानस को महत्त्व देने का मतलब है— कुल, समाज, लोक, विश्व आदि को महत्त्व देना। कारण, मानस की धर्म-भूमि जातीयता का एक क्रमिक समाजशास्त्रीय ढांचा रचती है। उनके लिए धर्म का अर्थ हिंदू धर्म नहीं है। वह कहते हैं— 'किसी परिमित वर्ग के कल्याण से संबंध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण से संबंध रखने वाला धर्म उच्चकोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती

है।' कारण, 'गृहधर्म या कुलधर्म से समाज धर्म श्रेष्ठ है, समाज धर्म से लोकधर्म, लोकधर्म से विश्व धर्म, जिसमें धर्म अपने शुद्ध और पूर्ण स्वरूप में दिखाई पड़ता है।' उदाहरण के लिए, विश्व धर्म या पूर्ण धर्म क्या है— इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल बताते हैं कि 'पूर्ण धर्म, जिसका संबंध अखिल विश्व की स्थिति रक्षा में है' और अखिल विश्व की रक्षा कौन कर सकता है? वह कहते हैं— 'पूर्ण पुरुष'। यह पूर्ण पुरुष कौन है? उसकी पहचान क्या है? इसकी चर्चा करते हुए वह 'मानस की धर्म-भूमि' निबंध में लिखते हैं कि 'वस्तुतः पूर्ण, पुरुष या पुरुषांतम में ही रहता है, जिसकी पारमिक अनुभूति सच्चे भक्तों को ही हुआ करता है। इसी अनुभूति के अनुरूप उसके आचरण का भी उत्तरोत्तर विकास हो जाता है।... पूर्ण या शुद्ध धर्म का स्वरूप सच्चे भक्त ही अपने और दूसरों के सामने लाया करते हैं जिनके भगवान् पूर्ण धर्मस्वरूप हैं, अतः ये कीट-पतंग से लेकर मनुष्य तक सब प्राणियों की रक्षा देखकर आनंद प्राप्त करते हैं।' (चिन्तामणि, पृ. 132-133)

क्या धर्म अथवा मानस के धर्म की यह व्याख्या ब्राह्मणवाद का समर्थन करती नजर आती है? अगर आती है तो लोगों को उनका एक चर्चित लेख 'जाति व्यवस्था' जरूर पढ़ना चाहिए। यह लेख उन्होंने 1924 के आसपास अंग्रेजी में लिखा था। उसकी अधूरी प्रति आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली के संपादक आम्रप्रकाश सिंह को आचार्य शुक्ल की प्रप्रीटी कुसुम चतुर्वेदी के सहयोग से मिली। अगर हम इस लेख के निम्नलिखित अंश को देखें तो पता चल जाएगा कि आचार्य शुक्ल वर्ण अथवा जाति-व्यवस्था के समर्थक थे या विरोधी—

'जाति व्यवस्था के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसने मनुष्य का स्तरों और श्रेणियों में रूढ़ विभाजन कर दिया है।...कुलीन और ऊपर से दैवीय कह जाने वाले ब्राह्मण अन्य सबको हेय दृष्टि से देखते हैं। क्रमशः प्रत्येक जाति अपने से नीची जाति को तुच्छ समझती है।...इसे यदि समाप्त नहीं किया गया तो भारतीय संस्कृति और शिष्टता, राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति की मृत्यु निश्चित है।... जाति पूर्वी सभ्यता की देन है। विश्व में और कहीं भी इसका अस्तित्व नहीं है। मानवता का यह रूढ़ विभाजन स्वार्थी पंडितों द्वारा छद्म धर्म में जोड़ा गया पृष्ठ भाग है।' (ग्रंथावली, पृ. 202-203)

कल्पना कीजिए, जो आलोचक जाति-व्यवस्था के समाप्त न किए जाने पर भारतीय संस्कृति यहां तक कि राष्ट्रभक्ति की मृत्यु तक की घोषणा करता है; उस पर वर्ण अथवा जातिवादी होने का आरोप लगाना कितना उचित है? स्पष्टतः आचार्य शुक्ल जाति व्यवस्था को सामाजिक विकास के लिए एक खतरनाक व्यवस्था के रूप में देखते थे। यहां तक कि जातीय जिंदगी को अव्यवस्थित करने वाली एक प्रक्रिया भी मानते थे। वह तो यहां तक कहते हैं कि यह 'स्वार्थी पंडितों' की देन है। फुले ने भी दलितों की दुर्दशा के लिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था को ही जिम्मेदार ठहराया था। अंबेडकर भी जब वर्ण-व्यवस्था की चर्चा करते हैं तब साफ कहते हैं कि यह चार माले की तरह है जिसमें एक-से-दूसरे पर जाने को लिए कोई सीढ़ियां नहीं हैं। यद्यपि अंबेडकर और आचार्य शुक्ल के विचार में बुनियादी फर्क है; पर इस उद्धरण से यह भी पता चलता है कि आचार्य शुक्ल जाति-व्यवस्था के समर्थक नहीं थे। उनका ध्येय भी एक शिक्षित सुसंस्कृत और जाति रहित समाज बनाना था।

दरअसल आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के एक बड़े आलोचक और विचारक हैं। अपने जीवनकाल में उन्होंने हिंदी के लिए जो जरूरी लगा, उसे किया। कहा जाता है कि यही आलोचक बड़ा होता है जो एक साथ तीन स्तरों पर काम करता है— एक, रचना और रचनाकार की व्यावहारिक आलोचना; दो, रचना को समझने की एक पद्धति विकसित करना अथवा सैद्धांतिक आलोचना

खड़ी करना; और तीन, इतिहास लेखन के माध्यम से रचना, रचनाकार और सिद्धांत की ऐतिहासिक समीक्षा करना। आचार्य शुक्ल तीनों स्तर पर यह कार्य करते हैं। तुलसीदास, सूरदास और जायसी के बहाने जहां वह व्यावहारिक आलोचना का स्वरूप विकसित करते हैं, वहां रस मीमांसा जैसी कृति के माध्यम से सैद्धांतिक आलोचना का ढांचा खड़ा करते हैं। ज्ञातव्य है कि आचार्य शुक्ल के रस मीमांसा के केंद्र में संस्कृत काव्यशास्त्र के समानांतर 'काव्य मीमांसा' खड़ी करने की चेतना थी। कम-से-कम वह इस बहाने काव्य (साहित्य) सिद्धांत अथवा काव्य-सृजन एवं मूल्यांकन की एक पद्धति विकसित करना चाहते थे। इसी प्रकार, हिंदी साहित्य का इतिहास लिखकर उन्होंने रचना एवं विचार के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को समझने का आधार निर्मित किया है। हिंदी में यह कार्य आचार्य शुक्ल के अलावा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा. रामविलास शर्मा करते हैं। एक हद तक मुक्तिबोध भी। इसलिए ये चारों हिंदी के बड़े आलोचक हैं।

लेकिन इनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि रचना के विश्लेषण और मूल्यांकन में जिसे वह छोड़ते हैं अथवा चुनौती देते हैं— वह वाद के आलोचकों को अवधारणात्मक स्तर तक सक्रिय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, मध्यकाल में उन्होंने कवीर की कविता और उनके ज्ञान की शिक्षित जन की परंपरा के खिलाफ बताया; परिणामतः कवीर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चिंतन के केंद्र में आकर खड़े हो गए हैं। यहां तक कि कवीर की सर्जनात्मकता और सामाजिक गतिशीलता को तार्किक बनाने के लिए आचार्य द्विवेदी ने 'साहित्य सहचर' में उन्हें फ्रांसीसी समाजशास्त्री इप्पो लित तेन की वैचारिक धारणाओं पर कसा तथा बताया कि कोई भी रचनाकार अपनी वंश परंपरा, आसपास की परिस्थितियों एवं युग की विचारधारा और विश्वास की उपज होता है। यह वही समाजशास्त्रीय चिंतन है जिस पर आगे चलकर 'साहित्य का समाजशास्त्र' विकसित होता है।

इसी प्रकार, आचार्य शुक्ल ने आधुनिक कवियों में छायावाद के जयशंकर प्रसाद को रहस्यवाद के करीब खड़ा करके उनके समस्त काव्य (खासकर, कामायनी) को उस आनंदवाद का प्रवर्तक बना दिया जो ऐकांतिक प्रेम की यकालत करता है। और यह 'ऐकांतिक प्रेम' इसलिए ग्राह्य नहीं कि इसमें इंदियों के सुख-विलास की मधुर और रमणीय अभिव्यक्ति हुई है। परिणाम, इससे कविता में 'भारी काम वासनाएं' व्यक्त होने लगती हैं। यहां तक कि आचार्य शुक्ल ने कामायनी में व्यक्त दर्शन (शैव से प्रभावित होने के कारण?) को भी नकार दिया। मुक्तिबोध का साहस देखिए, जिस कवि को आचार्य शुक्ल साहित्य की दुनिया के बाहर का रास्ता दिखाने में लगे थे, जयशंकर प्रसाद और उनकी कृति कामायनी के बहाने वह भारतीय सभ्यता की समीक्षा करने बैठ जाते हैं और कामायनी एक पुनर्विचार के सामाजिक अभिप्राय की व्याख्या करते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने लेखन में जिन रचनाकारों का समर्थन किया, वे तो हिंदी के बड़े कवि एवं लेखक हुए ही, जिनका विरोध किया, और साहित्य-विवेचना से बाहर किया—वे भी बड़े हो गए हैं। वे हिंदी आलोचना का केंद्र बन गए।

वास्तव में साहित्य और विचारधारा की दुनिया में बुनियादी तौर पर कोई भी बड़ा आलोचक यही कार्य करता है। वह समर्थन के लिए भी तर्क ढूँढ़ता है और विरोध करने के लिए भी तर्क पैदा करता है। पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल रचना और विचार की इस दुनिया में रहते हुए भी एक अलग और मौलिक किस्म के आलोचक हैं। उनके रचना व्याख्या और मूल्यांकन में सामाजिक

एक जीवंत व्यक्तित्व : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

शुक्ल जी की संवेदना ने मानव व्यापार जगत के प्रत्येक कोने को केवल छुआ ही नहीं है वरन अपनी लेखनी के माध्यम से रिसते छिद्रों को भरने का भरपूर प्रयास भी किया है। लेखक, आलोचक, कवि, कहानीकार, चित्रकार एवं अध्यापक, बहुआयामी प्रतिभासंपन्न, मूँछों में मुस्कुराने वाले आचार्य शुक्ल के धीर-गंभीर व्यक्तित्व में एक अति संवेदनशील, स्वाभिमानी, व्यंग्य-विनोद में निपुण, अति उत्साही, प्रकृति प्रेमी, क्रांतिकारी युवक छिपा हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में बता रही हैं मुक्ता

‘भारत को क्या करना चाहिए? यह प्रश्न इतना व्यापक है कि ध्यान केंद्रित करने के लिए इसे कई भागों में बांटना जरूरी होगा। किसी एक पहलू को दूसरे पर तरजीह देते वक्त, बदलते हुए समय को भी ध्यान में रखना होगा। दरअसल हमें समाज-सुधारक, राजनीतिक, आंदोलनकर्ता, कवि और शिक्षाविद— इन सबकी एक ही साथ, एक ही समय में, जरूरत है।’

1907 में लिखी गई ये पंक्तियां आज भी प्रासंगिक हैं। उन्नीस वषीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखा गया यह लेख ‘व्हाट हैज इंडिया टु डू’ कई पत्रों से लौटने के बाद अंत में *दि हिंदुस्तान रिव्यू* में छपा। सरकार की जड़ें चरमराने लगीं क्योंकि साफ सीधे शब्दों में, यह लेख एक चुनौती था।

‘ब्रिटिश लोग जो सबसे सामान्य दलील पेश करते हैं वह यह है कि हमारे विचार जनता के विचार नहीं हैं। हमारे नेताओं को बहुत ही चालाकी भरे ढंग से ‘लाखों लाख लोगों का स्व-घोषित प्रतिनिधि’ कहा जाता है। साम्राज्यवाद ही भारत में ब्रिटिश राष्ट्र की नीति की प्रेरक शक्ति रहा है। उन्होंने यहां यह हाल कर रखा है कि भारतीय प्रशासन में उनकी अपनी ब्रिटिश परिकल्पना का एक रेशा भी नहीं दिखाई देता। वे रूप रखते हैं लेकिन उसके सार तत्त्व को खत्म कर देते हैं। क्रिश्चियन भाइयों, क्या आप यह कहेंगे कि हमें किसी भी दूसरी चीज की परवाह नहीं। हम सिर्फ अपनी थैली भरना चाहते हैं। भरते रहो और भूखों मरते रहो, क्या यही आपका शासक सिद्धांत है? मेरे देशवासियों, जो इलाज आपने खोजा है वही एकमात्र इलाज है, दृढ़ता से पकड़े रहिए। अपने अंग्रेज दुश्मनों को यह कहने का मौका आगे मत दीजिए कि उनका सोचना खूत की बीमारी की तरह होता है। वे किसी मत को ऐसे पकड़ते हैं जैसे उन्हें सर्दी लगी हो, दौरा पड़ा हो लेकिन दौरा गुजरने के एक घंटे के अंदर ही वे सब कुछ भूलकर बैठ जाते हैं।’

आचार्य शुक्ल ने वही उद्धरण देकर भारतीयों को ललकारा था जो हिंदुस्तान से इंग्लैंड रिपोर्ट में भेजा गया था। अंग्रेजों के क्रूर दमन का शिकार

सुपरिचित लेखिका डा. मुक्ता आचार्य रामचंद्र शुक्ल की प्रपौत्री हैं।



होकर यह लेख जब्त कर लिया गया। शुक्ल जी ने बाल विवाह, अशिक्षा, अंधविश्वास, गरीबी, पूंजीपतियों की बढ़ती लिप्सा आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के अलावा देश-प्रेम और धर्म का पाखंड करने वालों का पर्दाफाश करके जनता को सबसे पहले उन्हें दंडित करने के लिए उत्प्रेरित किया— ‘हितोपदेश के गंधे ने तो बाघ की खाल ही ओढ़ी थी, ये लोग तो बाघ की बोली भी बोल लेते हैं। समाज को इनसे हर घड़ी सावधान रहना चाहिए। रसखान तो किसी की लकड़ी और कामरिया पर तीनों पुरों का राज्य तक त्यागने को तैयार थे पर देश-प्रेम की दुहाई देने वालों में से कितने अपने थके-मांड़े भाई के पुराने कपड़ों पर रीझकर या कम से कम खीजकर बिना मन मैला किए कमरे का फर्श भी मैला होने देंगे। मोटे आदमियों, तुम जरा-सा दुबले हो जाते, अपने अदेशों से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।’

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी की दयनीय दशा से विशेष चिंतित थे। आज के हिंदी अध्वेता, इस बात का अनुमान नहीं लगा सकते कि हिंदी साहित्य को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में प्रतिष्ठित कराने में उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा। पूरा हिंदी साहित्य, हिंदी को मान्यता एवं प्रतिष्ठा दिलाने के संघर्ष का इतिहास है।

हिंदी ऐय्यारी और तिलिस्म में उलझ चुकी थी। हातिम की सखावत के सामने कर्ण का दान और युधिष्ठिर का सत्यवाद भुला दिया गया था। शीरी-फरहाद के इश्क ने नल-दमयंती के सात्विक और स्वाभाविक प्रेम की चर्चा बंद करवा दी थी। वसंत ऋतु का आगमन भारत में होता था और भारतवासी गुले-लाला और गुले-नरगिस की फिराक में रहते थे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी को ‘देव बड़े हैं या विहारी’ के संकीर्ण घेरे से बाहर निकाला। हिंदी साहित्य का शब्दकोश *हिंदी शब्द सागर*, भाषा, शैली, व्याकरण संबंधी नए मानक बनाने और हिंदी साहित्य को विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कराने का श्रेय शुक्ल जी को है।

आचार्य शुक्ल की ऊर्जस्वित लेखनी ने भारतवासियों का साक्षात्कार

अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास से कराया। वही हिंदी जो कुली, मजदूरों और गंवारों की भाषा मानी जाने लगी थी, उच्चवर्ग के लोग जिसे बोलने में शर्मिंदगी का अनुभव करते थे, विश्वविद्यालय में जा पहुंची और संसार की विकसित एवं समृद्ध भाषाओं से टक्कर लेने लगी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक छोटे-से गांव में 4 अक्टूबर 1884 को शरद पूर्णिमा के दिन हुआ था। 1893 में शुक्ल जी की माता का देहांत हो गया और पिता की नियुक्ति मिर्जापुर जिले में सदर कानूनगो के पद पर हो गई। आर्थिक कष्ट में रहते हुए भी आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी सरकार की दी हुई नायब तहसीलदारी ठुकरा दी और मिर्जापुर स्थित लंदन मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक नियुक्त हुए। *हिंदी शब्द सागर* के सहायक संपादक होकर शुक्ल जी बनारस आए। कोश के कार्य के लिए आचार्य शुक्ल और बाबू श्यामसुंदर दास के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, लाला भगवान दीन और

अमीर सिंह मेहरा नियुक्त हुए। अब तक शुक्ल जी की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हो चुकी थीं। काव्य के मौलिक मानदंड स्थापित करने वाला लेख 'कविता क्या है' और 'भारत और वंस्त पद्यनाटक', जिसमें बंदे मातरम के जयघोष की प्रतिष्ठा पहली बार हिंदी साहित्य में हुई थी, प्रकाशित हो चुका था। 1919 में मालवीय जी के आग्रह पर शुक्ल जी ने अध्यापन आरंभ किया। शुक्ल जी ने विश्वविद्यालय में हिंदी विषय के स्वीकृत होने के बाद पाठ्यक्रम के अनुरूप पुस्तकें उपलब्ध न होने की समस्या को चुनौती के रूप में ग्रहण किया। स्वयं स्तरीय ग्रंथों की रचना की और संपादन कार्य भी किया। *रस मीमांसा* तथा *चिंतामणि* में संग्रहीत लेख, जायसी, तुलसी पर लिखी उनकी महत्त्वपूर्ण समालोचनाएं, हिंदी साहित्य में मील का पत्थर मानी जाने वाली कृति *हिंदी साहित्य का इतिहास* एवं अन्य अनेक ग्रंथ इसी अकादमिक चुनौती को स्वीकार करके रचे गए। शुक्ल जी ने जायसी को हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित किया। इस संदर्भ में एक रोचक घटना उल्लेखनीय है।

1922 में शुक्ल जी ट्रेन से सुलातनपुर जा रहे थे। ट्रेन में एक मुसलमान भिखारी फकीर *पद्मावत* के दोहे गाकर भीख मांग रहा था। शुक्ल जी बाहर का प्राकृतिक दृश्य देखना भूलकर उसे सुनने लगे। उसने दोहा पढ़ा—

यह तन जारों छार कर, कहाँ कि पवन उड़ाव

मकु वह मारग उड़ि पड़े, कंत धरे जहं पांव।

शुक्ल जी मुग्ध होकर उठे, फकीर के पास जाकर उसका गांव-धाम पूछा और यह जानकर कि वह जायस का रहने वाला है, अपनी यात्रा बीच में ही छोड़कर उसके साथ जायस चले गए। जायस में दस दिन रहे और मुसलमानों की आरजू-मिन्नत करके *पद्मावत* की मूल फारसी प्रति ले आए। नागरी प्रचारिणी सभा से उसके संपादन की जिम्मेदारी प्राप्त करके फारसी प्रति



आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपनी धर्मपत्नी के साथ

का बंगला प्रति से मिलान करके हिंदी लिप्यंतर करने लगे।

शुक्ल जी का प्रकृति एवं पशु पक्षियों से रागात्मक संबंध ही उनके *चिंतामणि* में संग्रहीत मनोविकार की शृंखला के अंतर्गत आने वाले 'भय', 'क्रोध', 'ईर्ष्या', 'घृणा', 'करुणा', 'लज्जा', 'ग्लानि' आदि लेखों और उनमें उद्धृत 'वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है' जैसी मार्मिक टिप्पणियों की पृष्ठभूमि बना।

शुक्ल जी का जीवन शारीरिक कष्टों एवं आर्थिक कठिनाइयों से भरा हुआ था। उन्होंने कभी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया। आर्थिक कष्ट में आकंठ डूबे रहने पर भी उन्होंने अलवर नरेश की नौकरी ठुकरा दी और काशी विद्यापीठ में भी जाने को तैयार न हुए। शुक्ल जी ने आधुनिकता को कभी सुधार या फैशन के नाम पर नहीं ओढ़ा और न ही भावुकता के कारण देशी रूढ़ियों से चिपके रहे। वे पाखंड के विरोधी थे और लोकमंगल की व्यापक

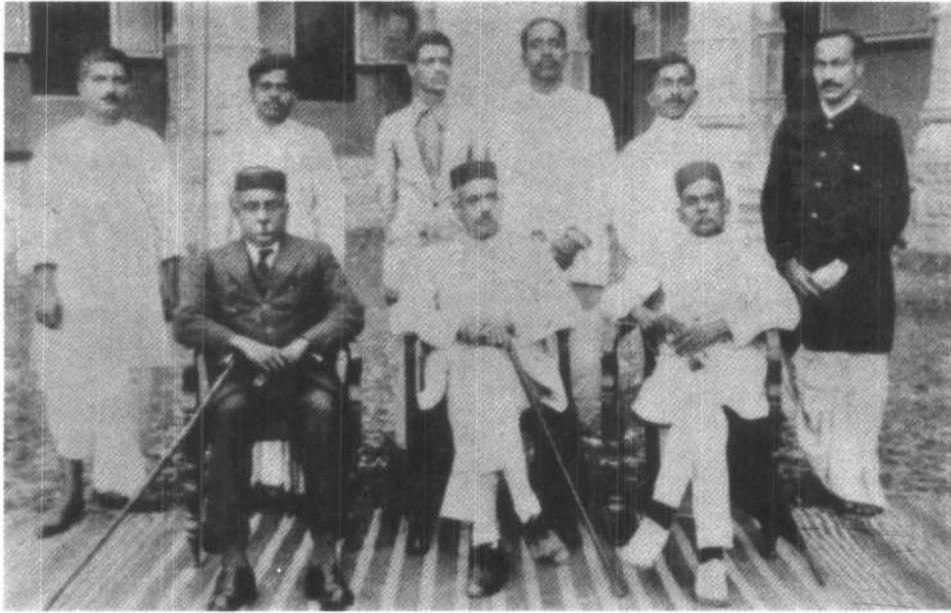
दृष्टि के पक्षपाती थे। आचार्य शुक्ल ने विश्व साहित्य को 'लोक मंगल की साधना' का सर्वथा मौलिक और नूतन सिद्धांत दिया। नदी, पर्वत, पशु, पक्षी के बीच से मानव की पहचान बनाने वाला शब्द 'लोक' साहित्य में आने से पहले उनके निजी अनुभव प्रसंगों की यात्रा बन चुका था। देश-प्रेम क्या है— समझाते हुए शुक्ल जी ने लिखा है— 'जो यह नहीं जानते, कोयल किस चिड़िया का नाम है, चातक कहाँ चिल्लाता है, किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बैठाकर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि 'भाइयो, बिना रूप परिचय का यह देश-प्रेम कैसा?'

आधुनिक भौतिकी के विकास से बहुत पहले शुक्ल जी ने भौतिकी की रूपरेखा *विश्व प्रपंच* की भूमिका में निर्धारित की। उन्होंने हैकल की *रिडिल ऑफ द यूनीवर्स* पुस्तक का अनुवाद *विश्व प्रपंच* के रूप में किया।

आचार्य शुक्ल ने समीक्षा के नए मानक गढ़े। उनकी दो टूक आलोचना के आगे नकली अध्यात्म, झूठी प्रगतिशीलता, छद्म आंदोलन मुरझा गए। कविता के सही मानक का मूल्यांकन करके उन्होंने ऐसा विकास दिया कि जो असली छायावादी कवि थे, वे आगे बढ़े, और जो नकली थे, खत्म हो गए।

आचार्य शुक्ल स्त्रियों के आभिजात्यवादी, कलावादी दुरुपयोग से नारी स्वाधीनता के प्रति चिंतित थे। *हिंदी साहित्य का इतिहास* में वे लिखते हैं— 'बहुत-से कवि बेचारी अप्सराओं को पर लगाकर कोहकाफ की परियों या वहिश्त के फरिश्तों की तरह उड़ाते हैं। कोई आंख के कोनों को कान तक पहुंचाता है, कोई उसे ब्रह्म की तरह अगोचर या सूक्ष्म बताता है।' पुरुष चेतना और नारी चेतना भिन्न नहीं है। फ्रायड के प्रभाव से नारीत्व का अवमूल्यन अधिक हुआ और सब जगह स्त्री का चित्र चिपकाना खेल-सा हो गया। शुक्ल

जी स्त्री को ललकारते हुए आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उसे पुरुष के मुकाबले खड़ा करते हुए लिखते हैं—‘आजकल तो स्त्री कवियों की कमी नहीं है। उन्हें अब पुरुष कवियों का दीन अनुकरण न कर अपनी रचनाओं में क्षितिज में उठती हुई मेघमाला को दाढ़ी-मूँछ के रूप में देखना चाहिए।’



काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के सदस्यों के साथ आचार्य शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास तथा पं. मदन मोहन मालवीय

शुक्ल जी की

ख्याति काशी के साथ जुड़ी है परंतु यह वास्तविकता कम लोग ही जानते हैं कि शुक्ल जी का काशी निवास एक लाचारी थी। उनका मन तो सदैव ही विंध्याचल की गोद में बसे मिर्जापुर की रमणीय उपत्यकाओं, वन प्रांतों एवं जल प्रपातों में रमा रहता था। मिर्जापुर की काली शिलाओं के आगे भेड़ाघाट की श्वेत संगमरमर की चट्टानें उन्हें नीरस लगती थीं। उनके विचार में—‘भय्यता ने रमणीयता को दबा दिया है। नदी की धारा भी ऊंची-ऊंची चट्टानों में हंसती-खेलती नहीं दिखाई पड़ती। मुझे ऐसा दृश्य मनोहर नहीं लगता। रमणीयता क्षण-क्षण पर रूप बदलने में है। यह बात मुझे कश्मीर के पहाड़ों में मिली या फिर मिर्जापुर में ही मिलती है। समुद्र भय्य, विशाल और भयानक कहा जा सकता है; सुंदर, रमणीय या मनोहर नहीं। ताजमहल मैंने 1910 में एक बार अच्छी तरह देखा था फिर कभी मन न चढ़ा। यही होता है कि अब वहां क्या देखना! मैं हिमालय को भय्य समझता हूं, रमणीय नहीं। रमणीय तो मुझे अपना विंध्याचल ही मालूम होता है। इसी से मैं समझाता हूं कि हिमालय में ‘गलने’ से अच्छा विंध्याचल में ‘तपना’ है।’

शुक्ल जी के चरित्र में निर्भयता का एक विशेष गुण था। उनके जीवन में कई ऐसे अवसर आए जब कि उनका जीवन संकटमय हो गया था परंतु फिर भी उनका धैर्य अडिग रहा।

मिर्जापुर के प्रवास के दिनों में एक बार वे अपनी पत्नी एवं इष्ट मित्रों के साथ वहां के प्रसिद्ध जल प्रपात विंदम गए। सावन का महीना था। आकाश में काली घटा छाई हुई थी। शीतल हवा बह रही थी। वहां पहुंचकर मित्र मंडली ने भांग छानी। फिर एक ऊंची विशाल चट्टान पर बैठकर सभी लोग वार्तालाप में मग्न हो गए। इसी बीच इक्केवानों ने आकर चेतावनी दी कि पहाड़ पर पानी खूब बरसा है इसलिए उस चट्टान से हट जाना चाहिए। सभी लोग वार्तालाप में मग्न थे, किसी ने ध्यान नहीं दिया। देखते-देखते उस चट्टान के नीचे बड़े वेग से नदी बहने लगी। धारा की तेजी के कारण पैर जमाना मुश्किल हो गया। सब लोग उसी चट्टान पर घिर गए। अब पानी ऊपर चढ़ने लगा, चट्टान डूबने लगी। चट्टान साठ-सत्तर फुट ऊंची थी। पानी बराबर बढ़ रहा था। इक्केवान ने निराश होकर रात के दो बजे शुक्ल जी के घर पहुंचकर खबर दी। वहां सबको वहां समझकर रोना-पीटना मच गया। सबके

घर वाले विंदम के लिए रवाना हुए। तीन बजते-बजते घुटने भर पानी चढ़ गया। सब लोग एक-दूसरे को पकड़कर खड़े हो गए। पानी का वेग इतना था कि हाथ छूटते ही लोग बहने लगते थे। शुक्ल जी ने मुस्कराते हुए अपनी पत्नी से कहा—‘अब बहने में एक हाथ की कसर है। हम लोगों का जल-प्रलय आ गया। देवता-पितर

मना लो, शायद यह चट्टान नूह की किशती हो जाए।’ संयोग की बात है, घुटने तक पहुंचकर पानी घटने लगा। सबको आशा बंधी। एक घंटे के भीतर चट्टान पानी के ऊपर हो गई। सब लोग इक्के पर सवार होकर घर की ओर चले तो रास्ते में ही रोते-बिलखते घर वाले मिल गए।

ऐसी ही एक संकटपूर्ण स्थिति उस समय आई थी, जब वे काशी में थे। बात 1936 की है। बडहर कोठी के किराए के कमरों को छोड़कर शुक्ल जी अपने नए मकान में आ गए थे। वहां से गौरीगंज, मदनपुरा करीब है। एक बार सांप्रदायिक तनाव हो गया। ‘हर हर महादेव’ और ‘अल्ला-हो अकबर’ की आवाजें पास से आ रही थीं। नए मकान के इर्द-गिर्द केवल जंगलनुमा बड़े-बड़े पेड़ चारों ओर थे और कुछ खेत थे जहां एक खटिक का परिवार रहता था। ऐसा लगा कि दंगाई उन्हीं पेड़ों के बीच से नारे लगा रहे हैं। खटिक का पूरा परिवार शुक्ल जी के यहां भागकर आया। शुक्ल जी की पत्नी तुरंत शुक्ल जी के पास आई और बोलीं—‘चला-चला जल्दी, बडहर कोठी में।’

शुक्ल जी मुस्कराने लगे—‘काहे!’

पत्नी ने हाथ पकड़कर कहा—‘अरे ऊ लोग पहुंच गए चला जल्दी। अरे कमली, कल्ये तू लोग भागा जल्दी बडहर कोठी, हम आवत हई।’

सारा शुक्ल परिवार और खटिक परिवार बडहर कोठी में चला गया। सबको पहुंचाकर छोटे पुत्र गोकुलचंद्र वापस आए। शुक्ल जी चुपचाप लिख रहे थे और पत्नी माथे पर हाथ धरे खड़ी थीं। पुत्र को देखते ही बोलीं—‘देखत का कल्ये, ई नाहीं जात हएँ।’

गोकुलचंद्र बोले—‘बड़का भाई (पिता को बड़का भाई कहते थे) ठीक नाही वा इहों। चले।’

शुक्ल जी बोले—‘का ठीक नाही वा! अरे, ऊ लोग भी त अदमिये हएँ। अइहे त हम बात करव न। ई सब अंगरेजन का चाल ह। नाहीं त कभी दंगा होत रहा?’

अब पत्नी घबरा गई। कलम पकड़कर बोलीं—‘आज त चला। काहे हट किए हउव?’

शुक्ल जी बोले—‘हम आदमी क अपमान करव? जा हमें न सतावा।’



शुक्ल जी की कलाकृति (राम वन गमन का दृश्य)

कल्ये। ले जा इन्हें।”

गोकुलचंद्र बहुत मनाकर मां को बडहर कोठी पहुंचा आए। स्वयं वहीं से खाना बनवाकर लाए और शुक्ल जी के साथ रात भर रहे।

इस घटना से शुक्ल जी का मानवतावादी पक्ष उजागर होता है।

सन 1924 के प्रताप में ‘सभ्य संसार का भावी धर्म’ में शुक्ल जी स्पष्ट मत व्यक्त करते हैं— ‘भावी धर्म रंग और राष्ट्र के अभिमान का विरोधी होगा। न केवल पड़ोसी और पीड़ित को प्यार करने की यह शिक्षा देगा बल्कि परदेशी और परतंत्रों के प्रति अनुराग पैदा कराएगा। इसमें ईश्वरोपासना को एक नया स्वरूप दिया जाएगा जिसके अनुसार ईश्वर भक्त लोग मानव जाति के रूप में ही भगवान को प्यार करना सीखेंगे।’

चिंतामणि भाग चार में संग्रहीत शुक्ल जी के लेखों ‘प्राण तत्त्व’, ‘आकाश का नीला रंग’, ‘निद्रा रहस्य’, ‘जाति व्यवस्था’, ‘धर्म का विकासवाद’ आदि लेखों में आचार्य शुक्ल की मौलिक वैज्ञानिक दृष्टि सर्वत्र दिखाई देती है। जाति व्यवस्था के वे विरोधी हैं। जाति व्यवस्था लेख की महत्वपूर्ण पंक्तियां उद्धृत हैं— ‘जाति ने वर्ग-भावना और वर्ग-अहंकार को पोषित किया है जो यदि उलटा नहीं गया तो भारतीय संस्कृति और शिष्टता, राष्ट्रीयता और देशभक्ति की पूर्णतया मृत्यु है...जाति पूर्वी सभ्यता की बालक है क्योंकि विश्व में कहीं भी इसका अस्तित्व नहीं है। मानवता का यह कठोर अनमनीय विभाजन उन स्वार्थी पंडितों द्वारा मिथ्या धर्म में जोड़ा गया पृष्ठभाग है जो गरीब पददलित वर्गों की कीमत पर धनी बन रहे हैं और आनंद कर रहे हैं तथा निरक्षर जनसामान्य की सरल भ्रातियों के आधार पर अपने मोटेपन को और पोषित कर रहे हैं और इससे भी अधिक वे इतनी दूर तक जा रहे हैं कि अनुशासन अथवा व्यवस्था नियम के नाम पर उनके लिए हर प्रकार की गालियों और बकवास को गढ़ रहे हैं।’

नागरी प्रचारिणी सभा के एक संस्थापक रामनारायण मिश्र के साथ शुक्ल जी अमरकंटक यात्रा पर थे। मिश्र जी आर्यसमाजी थे। जाति-पांति के सुधार पर चर्चा होने पर शुक्ल जी ने कहा— “जवानी जमा-खर्च से यह खाता बंद होने वाला नहीं। अनवरत क्रियात्मक विरोध ही सफल हो सकता है।”

केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य शुक्ल के साथ काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। मिश्र जी ने पूछा— “आपने लोकधर्म की बात लिखी है। हम सनातनी हैं। वर्णाश्रम धर्म से इसमें क्या अंतर है?”

शुक्ल जी ने अपनी कविता ‘प्रकृति प्रबोध’ की पंक्तियां सुनाई—
वर्ण भेद की लीक लोक लोचन ने डाली

नीले नभ के अंचल से वह लटकी लाली।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की संवेदना ने मानव व्यापार जगत के प्रत्येक कोने को केवल छुआ ही नहीं है वरन अपनी लेखनी के माध्यम से रिसते छिद्रों, को भरने का भरपूर प्रयास भी किया है। लेखक, आलोचक, कवि, कहानीकार, चित्रकार एवं अध्यापक, बहुआयामी प्रतिभासंपन्न, मूछों में मुस्कुराने वाले आचार्य के धीर-गंभीर व्यक्तित्व में एक अति संवेदनशील, स्वाभिमानी, व्यंग्य विनोद में निपुण, अति उत्साही, प्रकृति प्रेमी, क्रांतिकारी युवक छिपा हुआ था। अपने छप्पन वर्ष के अल्प जीवन में आचार्य ने अनेक कालजयी कृतियों की रचना की। हिंदी साहित्य द्वारा भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के उन्नयन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का योगदान अविस्मरणीय है। □

संपर्क : बी-4 अन्नपूर्णा नगर, कालोनी, विद्यापीठ रोड, वाराणसी

प्रथम जातीय (राष्ट्रीय) आलोचक

पृष्ठ 8 से आगे

संदर्भ तो दिखाई पड़ते हैं, रचना के सौंदर्य और कला पक्ष को भी वह समाज-सापेक्ष खड़ा करके, कसते हैं। उसकी अर्थवत्ता और सामाजिक गतिशीलता पर विचार करते हैं। रचना को खड़ा करने के लिए शास्त्र रचते हैं।

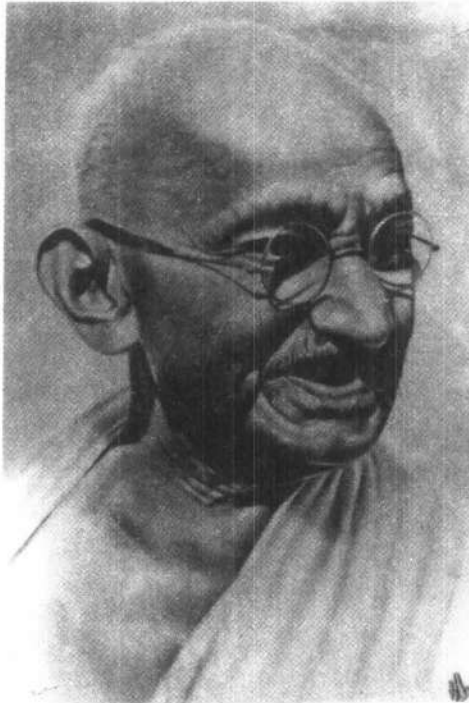
अगर आचार्य शुक्ल नहीं होते तो काव्यशास्त्र, खासकर रस सिद्धांत की इतनी तार्किक, समकालीन, प्रासंगिक और समाज-सापेक्ष व्याख्या और स्थापना नहीं होती। खास बात यह है कि हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने के लिए उन्होंने अनेक ऐसी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया, जिनकी जरूरत हिंदी समाज को थी। खासकर एडविन आर्नल्ड के लाइट ऑफ एशिया (अंग्रेजी) का बुद्धचरित के नाम से, जर्मनी के विख्यात प्राणितत्त्ववेत्ता हैकल की पुस्तक रिडल आफ द यूनिवर्स का विश्व प्रबंध के नाम से, सर टी. माधवराव की माइनर हिट्स का राज्य प्रबंध शिक्षा के नाम से, डा. श्वानबक की मेगास्थिनीज इंडिका का मेगास्थिनीज का भारत वर्षीय वर्णन के नाम से, वांग्ला के प्रसिद्ध उपन्यासकार राखालदास बंधोपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यास शशांक का उसी नाम से और डब्ल्यू एच. डी. एडम्स की प्लेन लिविंग एंड हाई थिंकिंग का आदर्श जीवन के नाम से अनुवाद किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन अनूदित पुस्तकों की उन्होंने लंबी भूमिकाएं लिखीं तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उनके महत्व को पाठकों के सामने रखा। उन्हें जातीय जिंदगी के लिए जरूरी भी बताया। इतना कार्य कम आलोचक ही कर पाते हैं। पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह सब किया; तब जब हिंदी भाषा और साहित्य का स्वरूप अभी बन ही रहा था। उन्होंने हिंदी में इतिहास की समझ विकसित की, कविता को जातीय जिंदगी के दस्तावेज के रूप में रखा और वैचारिक लेखों के माध्यम से हिंदी में सैद्धांतिक आलोचना की बुनियाद रखते हुए उसका विस्तार किया। इसीलिए वह आज भी हिंदी साहित्य और विचारधारा की दुनिया में एक बड़े आलोचक के रूप में स्थापित हैं। □

संपर्क : वार्डन फ्लैट 03, परिवार हॉस्टल, दक्षिणापुरम, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-1100067

हिंद स्वराज के सौ वर्ष

महात्मा गांधी की पुस्तक हिंद स्वराज के सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं। शताब्दी वर्ष के अवसर पर पुस्तक के संदर्भ में गांधीजी के चिंतन और जीवन दर्शन की चर्चा कर रहे हैं कृष्णदत्त पालीवाल

उत्तर आधुनिक समय में महात्मा गांधी के हिंदी स्वराज के पाठ का प्रश्न एक चुनौती है। यह महत्वपूर्ण कृति 1909 में प्रकाशित हुई। लेकिन इसमें 1903 से 1909 तक का महात्मा-चिंतन है—ऐसा सुलझा संत-चिंतन जो ऊपर से देखने पर सरल दिखाई देता है पर ध्यान से समझने पर उतना ही कठिन है। इस पाठ-संदर्भ में अर्थ बाहुल्य है और भारतीय सभ्यता-समीक्षा का सत्य दर्शन। प्रायः गांधी विचार-दर्शन को जल्दबाजी में समझने के कारण हमने गांधी पाठ का अंतःपाठ नहीं किया है— नासमझी से कुपाठ ही किया है। गांधी पाठ के संदर्भों को काटने का ही नतीजा है कि उन्हें प्रतिक्रियावादी-भाववादी कहकर गलत ढंग से व्याख्यायित किया गया। जबकि हिंद स्वराज के इस शताब्दी वर्ष पर हमें उसके पाठ पर नए सिरे से विमर्श करने की अपेक्षा है। इस अपेक्षा का यह अर्थ नहीं है कि हम उनके विचारों को समझने की बजाय उनके संत-महात्मा रूप को पूजा घर में स्थापित करके उसका भजन कीर्तन करते रहे।



भारतीय बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों, समाज-विश्लेषकों की क्या विडंबना है कि वे प्लेटो, अरस्तू, हीगेल, मार्क्स, सार्त्र, माओ, ग्राम्शी, शेक्सपियर आदि को समझने-समझाने के लिए जितनी तैयारी से लगे हैं उतनी तैयारी का परिचय गांधी-चिंतन को लेकर नहीं करते। प्रायः वे गांधी को पूंजीपतियों का दलाल या जापानी एजेंट कहकर खारिज कर देते हैं। जबकि उत्तर आधुनिकतावाद, उपभोक्तावादी संस्कृति, नव-पूँजीवाद, नव उपनिवेशवाद और नव सांस्कृतिक साम्राज्यवाद ने जो संकट आज पैदा किए हैं— उनकी अनंत ध्वनियां हिंद स्वराज के चिंतन में अंतर्व्याप्त हैं। यह संकट राजनीति, अर्थशास्त्र, बाजारवाद की बढ़ती ताकत, शिक्षा का अंग्रेजीकरण और व्यवसायीकरण, उच्चशिक्षा संस्थानों पर पूंजीपति माफियाओं का दबदबा, मुक्त यौन क्रांति, समलैंगिक कल्चर की वकालत, सरकारी-गैर सरकारी कामकाज में अद्भुत ढंग का भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक अकादमियों में संस्कृति-नीति का अभाव, नैतिकता, पवित्रता और मूल्य दृष्टि की हत्या, बर्बर व्यक्तिवाद, स्मृतिनाश से जातीय अस्मिता के नष्ट होने की बात तथा पूरी भारतीय संस्कृति, परंपरा, धर्म-दर्शन, कला-साहित्य को कूड़े में फेंकने की जो तैयारी चल रही है, उसे गांधी 'महात्मा' ने पहचान लिया था। इसलिए वह पश्चिम की सभ्यता को 'चंडाल सभ्यता' कहते थे। स्वाधीनता

डा. कृष्णदत्त पालीवाल जाने-माने लेखक हैं।

आंदोलन के दिनों में गांधीजी ने जो सपने देखे थे— आजाद भारत में उन्हें जैसे जलाकर खाक में मिला दिया गया है। पश्चिमवाद की नकल और मीडिया क्रांति, भूमंडलीकरण की तुरंत-ज्ञान-शैली भारत की समाज व्यवस्था को उजाड़ कर घोर भौतिकता की ओर धकेल रही है और हमारा पूरा अंतर्जगत आध्यात्मिकता को खोकर बंजर होता जा रहा है। सांस्कृतिक-नैतिक विचारधाराओं का अंत राजनीतिक माफिया 'सेकुलरिज्म' की आड़ में कर रहा है। समाज में देश-भक्ति की अवधारणा में पतनशील स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं। इस तरह लगभग सभी परंपरागत मूल्यों को अंग्रेजी ढंग की शिक्षा पाए हृदयहीन बुद्धिजीवी ध्वस्त कर रहे हैं। पूरा देश विदेशी पूंजी की धुनकियों पर टिका हुआ है। निर्धनता और निराशा, विकास और प्रगति, पर्यावरण और प्रदूषण, नारी और दलित, स्वास्थ्य और शिक्षा, नस्लवाद और जेंडर वाइस के विमर्श और विचार चक्र अपनी धुरियों पर भन्ना रहे हैं। चारों तरफ मानव भविष्य असुरक्षित है और विचार

का अंधेरा है। इस अंधेरे समय में आज भी हिंद स्वराज हमें प्रकाश दे सकता है और देह घिसते पश्चिमी शैतानों से कह सकता है कि पार्टनर हम तुम्हारी पालिटिक्स समझते हैं।

दरअसल, गांधी के मार्ग में विशेषकर हिंद स्वराज के सभी लेखों में उत्तर आधुनिकता के विमर्शमूलक बीज हैं। ये बीज महात्मा गांधी की आंतरिक मानसिकता के सर्वाधिक सर्जनात्मक काल (1903-1910) में पुष्ट हुए हैं। इसलिए जल्दबाजी में जिन लोगों ने गांधी को समझने को कोशिश की है वे उन्हें 'अवतार' 'संत', 'दलाल', 'ढोंगी', 'महात्मा', 'राष्ट्रपिता', 'कट्टर हिंदू', 'उच्च हिंदू सवर्णवाद के पोषक', 'प्रतिगामी चिंतन के मसीहा' और 'हिंदू खलनायक' कहकर गलत दिशा में भटक गए हैं। बाबा साहब अंबेडकर ने हमेशा गांधी को सर्वाधिक खतरनाक 'हिंदू खलनायक' कहा है। इस तरह 'राष्ट्रपिता' और 'महात्मा' को निरंतर अपमानित करने की हमारी वामोन्मुख परंपरा रही है। वामपंथियों ने हर जगह क्रांति की विरोधी छवि का नायक गांधी को घोषित किया। जबकि सच यह है कि अपने चिंतन-तर्क में गांधी बेहद आधुनिक, विवेकी, वयस्क और क्रांतिकारी हैं। इस क्रांतिकारी गांधी को भारत का जनमानस कभी छोड़ नहीं पाया तथा उन्हें 'जननायक' के रूप में अपार श्रद्धा व्यक्त की है। इधर तो इरफान हबीब जैसे इतिहासकार गांधी को सर्वाधिक प्रासंगिक घोषित कर रहे हैं और साहित्यकार पंत हों, दिनकर हों, मुक्तिबोध हों— गांधी पर पूरा भरोसा

करते हैं। हर तरफ से देश-विदेश के चिंतक कह रहे हैं कि भविष्य का संसार गांधी का ही अनुगमन करेगा। उसका कारण यह बताया जा रहा है कि प्रगति, विकास, आधुनिकता, हार्ड माइनिंग, बाजारवाद, नव उदारवाद, नव पूंजीवाद की नीतियों से लुटा-पिटा विश्व गांधी की विचार-छांह में ही चैन पाएगा।

हिंद स्वराज भारतीय परंपराओं के रक्षण की संकल्प शक्ति से संपन्न पुस्तक है। आज इसी कारण शिक्षा तंत्र को बचाने की बात हो या चिपको आंदोलन से पर्यावरण बचाने का सवाल हो, इन सभी आंदोलनों में गांधी की गूंज सुनाई देती है। कौन नहीं जानता कि गांधीजी ने भारतीय संत परंपरा, गीता-दर्शन, नरसी मेहता, रस्किन, टालस्टाय, थोरी, दादा भाई नौरोजी आदि के सिद्धांतों को मथकर उनके भीतर से जीवन का नया राग-दीप्त सच निकाला था। दया, धर्म, करुणा-आदि को उन्होंने उपनिषद, बौद्ध, जैन, ईसाई आदि धर्मों से पाया और संत-दर्शन विचार में तपाकर उसके सार 'अहिंसा' को ही केंद्रीय स्थान दिया। टालस्टाय के विचार को गांधी ने गांध में बांध लिया कि 'ईश्वर का राज तुम्हारे भीतर है— उसे खोजने जाओगे तो कहीं नहीं मिलेगा।'

यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि विलायत जाने के समय तक गांधी का विश्वास हिंसा में था और अहिंसा पर घोर अविश्वास। टालस्टाय को पढ़ने के बाद उनका विश्वास हिंसा से उठ गया और वह 'ब्रेजलेवर' दर्शन की ओर मुड़ गए। उन्होंने इस सत्य का आत्मदर्शन किया कि जीवन का कानून 'ब्रेजलेवर' भूलने के कारण ही संसार में त्राहि-त्राहि मची है— असमानता-विषमता-शोषण बढ़ा है। सत्यानाशी पूंजीवाद-साम्राज्यवाद पनपकर राक्षस हो गया है— अपार शक्तिशाली ड्रैगन। उत्तर आधुनिकतावाद आज यही बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ताकत से भरा ड्रैगन है, जो मल्टीनेशनल्स के रूप में मौजूद है। यह ड्रैगन पूरी शक्ति से बुद्ध और गीता के उस चिंतन की उपेक्षा करता है जो अन्याय, अपमान, युद्ध को नष्ट करने का संदेश देता है। उसकी नीति में 'मनी, माइंड और मसल' तीनों को मिलाकर एक करो और दुनिया को लूटो खाओ, राज्य करो, का संदेश है। लेकिन हिंद स्वराज के गांधी ने रस्किन को पढ़ा, समझा और अपनाया रस्किन की पुस्तक *अनटू द लास्ट* का जादू गांधी के सिर चढ़कर बोला। गांधी ने हिंद स्वराज में माना है कि 'इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ न सका। इसने मुझे पकड़ लिया। बाद में मैंने उसका गुजराती में अनुवाद किया और वह सर्वोदय के नाम से छपा। मेरा यह विश्वास है कि चीज मेरे अंदर गहराई में छिपी पड़ी थी—रस्किन के ग्रंथ *रत्न* में मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिंब देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिए गए विचारों पर अमल करवाया। मैंने सर्वोदय के सिद्धांतों को इस प्रकार समझा है— 1. सबकी भलाई में अपनी भलाई निहित है, 2. वकील और नाई दोनों के काम की नीयत एक-सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है, 3. सादा, मेहनत मजदूरी का किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।' (हिंद स्वराज्य, पृ. 3)

गांधी पर गहन चिंतन और शोध करने वाले भिक्खु पारीख जैसे विद्वानों ने हिंद स्वराज के विचारों की काफी छानबीन करने के बाद माना है कि गांधी दृष्टि के निर्माण में हिंदू धर्म की मूल स्थापनाओं से लेकर ग्रीक दर्शन के महात्मा सुकरात तक का हाथ है। इतना ही नहीं, गांधी पर कुरान का असर है— थोडो का सत्य दर्शन उनमें सर्जनात्मक रूप में मौजूद है। इनमें से किसी एक को भी निकालने पर गांधी में अधूरापन आ जाता है। इसलिए गांधी-दृष्टि का प्रवाह धर्म और विज्ञान, पूर्व-पश्चिम, परंपरा-आधुनिकता को फेंटकर एक विश्व दृष्टि का निर्माण करता है। उनमें नरसी मेहता, कवि रामचंद्र भाई, कबीर, तुलसी, सूर, टालस्टाय, रस्किन, टेस्टामेंट तथा गीता और कुरान सभी एक प्रवाह में हिल-मिलकर विराट मानव-दृष्टि की गांधी में निष्पत्ति करते हैं। इसलिए गांधी

में मैथिलीशरण गुप्त 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का बीज मंत्र पाते रहे हैं।

आज हिंद स्वराज के शताब्दी वर्ष पर प्रायः यह प्रश्न बड़े ही उत्तर-आधुनिक अंदाज (उपद्रवी तेवर) में किया जाता है कि हिंद स्वराज का प्रेरणा संदर्भ क्या है और क्यों इसकी अंतर्वस्तु को इतना महत्व दिया जाता रहा है? क्या यह चरम मूर्खता से भरी बंडल कृति नहीं है? इन प्रश्नों का उत्तर देने से पहले इतिहास को साक्षी बनाना होगा। हिंद स्वराज के लेखों को गांधी ने सर्वप्रथम *इंडियन ओपीनियन* पत्रिका के गुजराती अंश 11 तथा 19 दिसंबर 1909 के अंकों में प्रकाशित किया। इन लेखों को पुस्तकाकार रूप में उसी समय प्रकाशित किया गया— प्रकाशन गांधीजी ने 'फीनिक्स आश्रम' नेटाल से किया। इस पुस्तक का 1909-10 में प्रकाशन क्या हुआ, आधी रात को सूर्य निकल पड़ा। भयभीत होकर इस पुस्तक को 'बेहद खतरनाक' घोषित करते हुए भारत की अंग्रेजी सरकार ने जवाब कर लिया। विशेष बात यह है कि गांधी इस जब्ती से भयभीत नहीं हुए। उन्होंने स्वयं इसका अंग्रेजी अनुवाद करके 20 मार्च 1910 को नेटाल से ही *इंडियन होमरूल* को प्रकाशित किया। यह तथ्य भी यहां जानना जरूरी है कि यह पुस्तक इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान 'किडोनल कैसल' नामक पानी के जहाज पर 13 से 22 नंबर के बीच रात-दिन लेखन में जुटकर तैयार की गई थी। साथ ही 1903 से गांधीजी अंग्रेजी, गुजराती द्विभाषिक पत्रिका का संपादन कर रहे थे और 1904 में रस्किन की पुस्तक पर दीवाने हो गए थे। उन्होंने डर्बन शहर के बाहर 'फीनिक्स आश्रम' की स्थापना की और वकालत से ध्यान हटाकर किसान का जीवन जीने की तैयारी की और प्रयोग करने लगे। सन 1906 में सत्याग्रह का मार्ग अपनाया। कुछ समय बाद ऐसा अवसर बना कि एक प्रतिनिधिमंडल के साथ इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों से गांधी को मिलने का अवसर मिला। इससे पूर्व 1906 के जूलू विद्रोह ने गांधी को नए अनुभव दिए थे और नस्लवाद की यातना के शिकार लोगों की यातना से साक्षात्कार कर चुके थे। भारतीयों के साथ होने वाले भेदभाव से पीड़ित होकर वे सत्याग्रह का मार्ग अपना चुके थे। इस गांधी को 1908 में गिरफ्तार कर लिया गया और कैद हुई। इसी बीच हिंद स्वराज के लेखक गांधी ने टालस्टाय की एक चर्चित कृति 'एक हिंदू के नाम पत्र' का अनुवाद किया और प्रस्तावता भी लिखी।

निर्भयता का ही नाम गांधी है। देखिए न, गुजराती में लिखे हिंद स्वराज पर पाबंदी लग जाने के बाद 1910 में जोहान्सबर्ग के बाहरी हिस्से में गांधी ने 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना की और अपनी कल्पना को साकार किया। इस तरह हिंद स्वराज के सृजन-काल में, उसकी सृजन-काल की पृष्ठभूमि में भारी तनाव और अपूर्व कोलाहल मौजूद है। इस कोलाहल का पाठ, उपपाठ, अंतःपाठ करने की जरूरत है— ताकि उसके दमित अर्थ— संदर्भ का डिस्कोर्स या नया भाष्य किया जा सके। पाठक कैसे भूल सकता है कि हिंद स्वराज के पाठ विमर्श (टेक्स्ट एनालिसिस) के लिए रस्किन और टालस्टाय की वैचारिक भूमि का महत्व अविस्मरणीय है।

आज भी गांधी का यह कथन एक नया पाठ विमर्श चाहता है कि 'यह रचना मेरी है और मेरी नहीं भी है।' इस कथन का ध्वन्यार्थ यह कि इस बहुलतार्थक, बहुवचनात्मक संदर्भों से गांधी रचना में देशी-विदेशी विचारों का 'फ्यूजन' या सर्जनात्मक खमीर उठा हुआ है, यह इकहरे पाठ की सरल कृति नहीं है। उसके पाठ के भीतर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के कुकर्मों का एक पाठ और मौजूद है— जिसे चौकन्नी निगाह से गहराई में उतरकर पढ़ना चाहिए। इसकी 'क्लोज रीडिंग' आवश्यक है। सोचने की बात यह है कि बीस वर्ष तक इसमें तपने-खपने के बाद चालीस वर्ष की उम्र में गांधी ने इसे लिखा। साथ ही यह निवेदन भी किया

कि 'इसके पाठक हिंद स्वराज की संदर्भ सूची की बीस किताबों को भी पढ़ें ताकि विचारों के अंतःसूत्र स्पष्ट हो सकें।' इस सूची में हमारी आजादी की लड़ाई के भीष्म पितामह दादा भाई नौरोजी की प्रसिद्ध पुस्तक *पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया* के साथ राष्ट्रवाद के सिद्धांतकार मैजिनी की पुस्तक को भी स्थान दिया गया है। इस सूची में टालस्टाय, रस्किन, थोरो, प्लेटो, मेक्सनार्ड के साथ कोर्पेटर की पुस्तक *सिविलाइजेशन इट्स काज एंड क्योर* को भी शामिल किया गया है।

गांधीजी ने *हिंद स्वराज* के सोच से साम्राज्यवादी लेलुप सभ्यता के प्रति भारतीयों को सावधान किया। नए राजनीतिक, आर्थिक संकटों के संकेत के साथ यह भी कहा कि अंग्रेजी लूटतंत्र तबाही मचा रहा है। इसे कभी भी दुर्भाग्यवश न इस देश ने स्वीकार किया न जवाहरलाल नेहरू ने। नेहरू जी पश्चिमी आधुनिकता के मॉडल को लेकर आगे बढ़े और हम आज भी उसी मॉडल पर कायम हैं। नेहरू मॉडल ने गांधी के 'स्वदेशी', 'ग्राम स्वराज', 'चर्खा-नीति', 'स्वभाषा स्वधर्म', 'स्वाधीन चिंतन' के मॉडल को न केवल अस्वीकार किया बल्कि इस देश से उसे खदेड़ दिया। गांधी किसी भी कीमत पर पश्चिम के उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी मॉडल को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। वे भारतीय नैतिकता पवित्रता के मॉडल से मानव का नैतिक परिष्कार करने के पक्षपाती थे। उन्होंने *हिंद स्वराज* में अपनी हर वैचारिक सांस से स्पष्ट किया कि स्वराज लाना है तो भारत को अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्त कराना होगा। दादाभाई नौरोजी के प्रति गांधीजी में अपार श्रद्धा भाव था। गांधीजी ने कहा है— 'हिंद का खून अंग्रेजों ने चूस लिया है—यह सिखाने वाले माननीय दादा भाई नौरोजी हैं।' (*हिंद स्वराज*, पृ. 5)

गांधीजी ने *हिंद स्वराज* में बीस लेख लूटतंत्र पर आमादा शैतान सभ्यता या चंडाल सभ्यता से भारत को मुक्त कराने के लिए लिखे हैं, जिसे 'अंग्रेजों ने एक मूर्ख आदमी का चिंतन' माना था। लेकिन इन बीस लेखों के शीर्षक गांधी की मानसिकता में उमड़ते-धुमते अरमानों का ठीक-ठीक पता देते हैं। *हिंद स्वराज* की प्रस्तावना में उन्होंने कहा— 'जो विचार यहां रखे गए हैं वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं। वे मेरे हैं क्योंकि उनके मुताबिक बरतने की मैं उम्मीद करता हूँ। वे मेरी आत्मा में गढ़े-जड़े जैसे हैं।' मूल बात यह कि गांधी ने देशी-विदेशी पुस्तकों का सार निचोड़कर यह विचार भंडार तैयार किया जिस पर पश्चिम सभ्यता का पिछलग्गू बनने की धुन सवार नहीं है। गांधी ने साफ कहा है कि इस देश को चौपट अंग्रेजी पढ़े-लिखे पश्चिमी सभ्यता की नकल की धुन में पागल हृदयहीन भारत के बुद्धिजीवियों ने किया है। अंग्रेजों ने भारत को गुलाम नहीं बनाया, इन भारतीय नकलजी बुद्धिजीवियों ने ही भारत को गुलाम बनाया है। इन बुद्धिजीवियों में देश-प्रेम का अभाव है और अपनी सभ्यता-संस्कृति-परंपरा धर्म-दर्शन के प्रति धिक्कार का भाव है। गांधीजी ने भारत के नव जागरण की सांस्कृतिक संवेदना और अस्मिता को लेकर बीस लेख लिखे हैं— 1. कांग्रेस और उनके कर्ता-धर्ता, 2. बंगभंग, 3. अशांति और असंतोष, 4. स्वराज क्या है, 5. इंग्लैंड की हालत, 6. सभ्यता का दर्शन, 7. हिंदुस्तान कैसे गया, 8. हिंदुस्तान की दशा, 9. हिंदुस्तान की दशा-2, 10. हिंदुस्तान की दशा-3, 11. हिंदुस्तान की दशा-4, 12. हिंदुस्तान की दशा-5, 13. सच्ची सभ्यता कौन-सी, 14. हिंदुस्तान कैसे आजाद हो, 15. इटली और हिंदुस्तान, 16. गोला-बारूद, 17. सत्याग्रह आत्मबल, 18. शिक्षा, 19. मशीनें, 20. छुटकारा। इन सभी लेखों की अंतर्वस्तु की आत्मध्वनि केवल एक समस्या लिए है कि हिंदुस्तान अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त कैसे हो।

वास्तविकता यह है कि गांधी का भारतीय सभ्यता-संस्कृति-परंपरा चिंतन में

अटूट विश्वास था। उन्होंने कहा है— 'मैं यह मानता हूँ कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने सिखाई है, उसको कोई नहीं पहुंच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फंस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मौजूद है।' (*हिंद स्वराज*, पृ. 44) भारत की सभ्यता संस्कृति, धर्म-नीति-न्याय-अहिंसा, नैतिकता, आत्मबल की सभ्यता है— आचरण की पवित्रता से भरी सभ्यता है, ग्राम समाज की सभ्यता है। सोच-समझकर हमारे पुरखों ने धूर्तों की टोलियों वाले, वेश्याओं की गलियों वाले, गरीबों को लूटने वाले ऐंद्रिय भोगवाद के पीछे मनुष्य को पागल बनाने वाले शहर खड़े नहीं किए। बड़े शहरों को खड़ा करने का काम पश्चिम ने किया और उसी ने पाशविक चंडाल सभ्यता को पाल-पोसकर बड़ा किया। हम उसी के चक्कर में आ गए— उसी पश्चिमी आधुनिकता के जाल में फंसकर रह गए जो शहरीकरण, अमानवीकरण और बर्बर व्यक्तित्व पर केंद्रित है। इधर हम उत्तर आधुनिकतावाद, शरीरवाद, ऐंद्रियवाद की उपभोक्ता संस्कृति के गुलाम हो गए। उपभोक्तावादी संस्कृति का शैतान हमारी चिंतन परंपरा की नींव खोद रहा है ताकि हम उनके भौतिकवादी नरक में शरीक रहें। आज उनका व्यापारोन्माद फिर से भारत को अपना 'उपनिवेश' बना रहा है। गांधीजी मानते थे कि पश्चिम की शैतान सभ्यता ने रेल-वर्काल डाक्टर की तिगड़ी से भारत को बर्बाद किया है— 'और जहां यह चंडाल सभ्यता नहीं पहुंची है वहां आज भी हिंदुस्तान वैसा ही है।' (वही, पृ. 46)। सच तो यह है कि पश्चिमी आधुनिकता के चंडालवाद से अरविंद, विवेकानंद, दादा भाई नौरोजी, तिलक और गांधी घबराते डरते रहे हैं और घबराने का उनके पास तर्क है। 'पश्चिमी सभ्यता का झुकाव अनीति को मजबूत करने की ओर है, इसीलिए मैंने उसे हानिकारक कहा है।' (वही, पृ. 47)

गांधी की मूल समस्या रही है पश्चिमी साम्राज्यवाद के लूटतंत्र से छूटकर भारत आजाद कैसे हो। पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीय तो आजादी में बाधक हैं। गांधी ने 'हिंदुस्तान आजाद कैसे हो?' लेख में कहा— 'और फिर सारा हिंदुस्तान उसमें (गुलामी) में घिरा हुआ नहीं है। जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा पाई है और जो उसके पाश में फंस गए हैं। वे ही गुलामी में घिरे हुए हैं। हम जगत को अपनी दमड़ी के नाप से नापते हैं। अगर हम गुलाम हैं तो जगत को भी गुलाम मान लेते हैं। हम कंगाल दशा में हैं, हालांकि मान लेते हैं कि सारा हिंदुस्तान ही इसी दशा में है।' (वही, पृ. 49) फिर कहा— 'हिंदुस्तान की गुलामी मिटाकर 'हम अपने ऊपर राज करें, वही स्वराज है और वह स्वराज हमारी हथेली में है।' (पृ. 49) गांधी ने इस स्वराज की अद्भुत व्याख्या की है। वे मानते भी थे कि हिंदुस्तान में असाधारण बल है और यह शैतान सभ्यता हमें कमजोर करने पर आमादा है— 'हमें लड़कर अंग्रेजों को निकालना ही होगा, इसमें कोई शक नहीं। जब तक वे हमारे मुल्क में हैं तब तक हमें चैन नहीं पड़ सकता। पराधीन सपने सुख नहीं—ऐसा देखने में आता है। अंग्रेज यहां हैं इसलिए हम कमजोर होते जा रहे हैं। हमारा तेज चला गया है और हमारे लोग घबराए से दीखते हैं। अंग्रेज हमारे देश के लिए यम (काल) जैसे हैं। उस यम को हमें किसी भी प्रयत्न से भगाना होगा।' (पृ. 51) वे राजे-महाराजे जो गरीब जनता को अंग्रेजों की शह पर नीचता से कुचल रहे थे उन पर भी था क्योंकि वे इस देश के देशाभिमान में कंस हैं। गांधी ने ध्यान दिलाया— 'भारत को अधम अंग्रेजी सभ्यता की भांग नहीं पीनी है। न भारत को गोला-बारूद (हिंसा-युद्ध-आतंक-मारकाट) के जाल में फंसना है। कभी भी धतूरे का पौधा लगाकर मोंगरे के फूल की इच्छा पूरी नहीं हो सकती है। भारत को हर कीमत

पर आत्मबल-सत्याग्रह के बल पर जीना है। और यह बल 'अविनाशी' है। गांधी को अचानक संत तुलसी याद आते हैं— *दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान / तुलसी दया न छोड़िए, जब लगी घट में प्रान*। मूलतः यह लोक और शास्त्र दोनों का पवित्र वचन है— यहां पश्चिमी हिस्ट्री का कोलाहल नहीं है। अतः अंग्रेजी में सत्याग्रह का गलत अनुवाद किया गया है— पैसिव रेजिस्टेंट। हमें अंग्रेजों की ठग-विद्या से बचना है ताकि हम सनातन धर्म के मार्ग पर चल सकें। सत्याग्रह का बल तोप-तलवार से ज्यादा ताकत संपन्न बल है।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा को लेकर महात्मा गांधी का माथा गरम रहा है। उनकी दृष्टि में शिक्षा का अर्थ है— शांत, इंद्रिय-निग्रही, शुद्ध बुद्धि, न्यायदर्शी लोकहितकारी और देश-प्रेमी दृष्टि। ज्ञान कोरी मूर्ति पूजा की तरह नहीं है। वह चेतना की कामधेनु है। और 'स्वराज', 'स्वाधीनता' के लिए अंग्रेजी शिक्षा नाश करने वाली है। गांधीजी ने पूरे वेग से कहा— 'करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी— ऐसा मैं...'। (पृ. 74) यह 'कितने दुख की बात है कि हम स्वराज की बात भी पराई भाषा में करते हैं।' वेल्स के बच्चे वेल्स में बोले, यह कोशिश वहां चल रही है। और हमारी दशा क्या है? हम गलत अंग्रेजी में दूसरों को पत्र लिख रहे हैं। हमारे अच्छे से अच्छे विचार कहने का जरिया अंग्रेजी है— हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में चलता है। यह अगर चलता रहा तो इसका अभिशाप हमारी आत्मा को लगेगा। आपको समझना चाहिए, अंग्रेजी शिक्षा देकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ, राग, द्वेष, जुल्म वगैरा बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है।' (पृ. 75) यह भी गांधी कहना नहीं भूले कि हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हानि अंग्रेजी पर नहीं, हम पर पड़ेगी। हृदय पीड़ा की बात गांधीजी के लिए भी थी— 'हिंदुस्तानी सागर के किनारे ही मैल जमा है। उस मैल से जो गंदे हो गए हैं, उन्हें साफ होना है।' (पृ. 77) गांधी के इसी मॉडल को नेहरू मॉडल ने समाप्त किया है।

गांधी को रमेश चंद्र दत्त की पुस्तक *हिंदुस्तान का आर्थिक इतिहास* भीतर तक भिगोती रही है, इसे पढ़कर महात्मा का दिल भर आया— 'मैनचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुंचाया है, उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिंदुस्तान में करीगरी जो करीब-करीब खत्म हो गई है वह मैनचेस्टर का ही काम है।' (पृ. 78) देश में गांधी ने चर्खा आंदोलन चलाया। इस चर्खा-खादी आंदोलन का विरोध गांधी के परम सखा रवींद्रनाथ टैगोर तक ने किया। लेकिन गांधी कहीं भी इसमें रुके नहीं। उन्होंने यहां के 'माडरेटों' और 'एक्स्ट्रीमिस्टों' से भी नम्रता के साथ कहा कि ऐसे 'स्वराज' हासिल होने वाला नहीं है। दूसरे जो स्वराज दिला दें वह स्वराज नहीं है। हमें अपना स्वराज अपने बलबूते पर लाना है। अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने का लालच छोड़ना होगा। क्योंकि अंग्रेजों ने भारत को कोरा खेतियर बनाकर हमारे उद्योग-धंधों को चौपट किया और किसान मजदूर को 'भारत-भिखारी' बनाकर दम लिया।

हिंद स्वराज स्वदेशी का प्रथम घोषणा-पत्र है और हमारे भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण का ऐतिहासिक दस्तावेज। सन 1920-21 में गांधीजी ने जिस स्वाधीनता संग्राम की अगुआई की, उसके विचार बीजों का खजाना *हिंद स्वराज* है। यह स्वराज की अवधारणा गांधी का अपना मौलिक आविष्कार नहीं है।

इसे गांधी ने वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, गीता, पुराण, रामायण, महाभारत, संत-परंपरा, धर्म-दर्शन न जाने कितने स्रोतों को दुहकर पाया है। इसी स्रोत से हिंदी के आधुनिक साहित्य के प्रवर्तक भारतेन्दु वाचू और मैथिलीशरण गुप्त जुड़े रहे हैं। भारत के मन में यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान तकनीक को लेकर जो हीनता ग्रंथि पनप रही थी, गांधी उस हीनता ग्रंथि से भारत की पीढ़ी को मुक्त करना चाहते थे। गांधी ने यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, व्यापार, तकनीक, शिक्षा-धर्म से अप्रभावित रहते हुए *हिंद स्वराज* में एक नया मॉडल प्रस्तुत किया। 1909 में *हिंद स्वराज* को जिस विचार भूमि से प्रस्तुत किया था, जीवन-भर वे उस पर अटल रहे।

हिंद स्वराज के बीज भावों-विचारों को लेकर गांधी 1920 में स्वाधीनता आंदोलन में पूरे संकल्प से डटे रहे और चर्खा-खादी के विरोधियों को समझाया कि चर्खा, गरीब बहनों को रोजगार देकर उनके शील की रक्षा करता है। यह हमारा 'बायां फेफड़ा' है जिसे बचाना होगा। जीवन आलस्य से मरता है और श्रम की सक्रियता से हरा-भरा रहता है। इसलिए चर्खा-खादी केवल वस्त्र नहीं हैं, विचार हैं— भूखे-नंगों को रोटी देने का मार्ग हैं। इसी तरह गांधी कभी नहीं भूले कि भारत भूमि पर न जाने कितनी जातियां, संप्रदाय आकर बसी और भारतीयता में समा गई। यहां की देशी विरासत में हिंदू-मुसलमान सभी आते हैं और भारत नस्लवाद में विश्वास नहीं करता है। पूरी भारतीय सभ्यता संस्कृति को मथकर गांधी का मन बना था। इसलिए हमारी सांस्कृतिक परंपराओं में जो भी श्रेष्ठ था— वह गांधी में साकार होकर सामने आया था। गांधी सत्याग्रह युग के नायक ही नहीं थे, पूरे हिंदुस्तान की आंतरिक तय के प्रतीक थे— मोहन थे और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के कंस से भारत को मुक्त कराने के लिए 'अवतार' धारण कर पैदा हुए थे। उन्होंने अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग को नया अर्थ सौंदर्य दिया। इसलिए बुद्ध के 'धम्मपद' से भी ज्यादा महत्त्व की पुस्तक है— *हिंद स्वराज* 1937-38 में गांधी ने *हिंद स्वराज* को फिर से स्मृति सूर्य बनाया तो उनके अनुयायी दंग रह गए। अब भी गांधी *हिंद स्वराज* के विचारों पर कायम थे। प्रमाण यह कि गांधीजी ने 5 अक्टूबर 1945 को जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र लिखकर कहा— 'मैंने कहा कि *हिंद स्वराज* में मैंने लिखा है, उस राज्य पद्धति पर मैं विलकुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है लेकिन जो चीज मैंने 1909 में लिखी है— उसी चीज का सत्य अनुभव से मैंने आज तक पाया है।' (*कुछ पुरानी चिट्ठियां*, पृ. 677) गांधीजी का *हिंद स्वराज* उनके उत्तराधिकारी नेहरू जी को पसंद नहीं आया। वह नेहरू जी को असलियत से परे की पुस्तक लगती थी। इसलिए नेहरू जी *हिंद स्वराज* को अप्रासंगिक पुस्तक मानते रहे हैं।

दरअसल आज *हिंद स्वराज* पर पुनर्विचार, पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि से पाठ-विमर्श करने की आवश्यकता है। क्योंकि आज का 'भारत ... डेट इज इंडिया' गांधी के *हिंद स्वराज* के मार्ग को छोड़कर पश्चिम की राह पर चल पड़ा है और ग्लोबलाइजेशन तथा उत्तर आधुनिकतावाद की उपभोक्तावादी संस्कृति, बाजार-व्यवस्था, शिक्षा, मीडिया, संचार-क्रांति में, ग्लोबल विलेज, ग्लोबल कल्चर की ओर भाग खड़ा हुआ है। भारत फिर पश्चिम का उपनिवेश बन रहा है— हम एक नई गुलामी की ओर बढ़ रहे हैं। यह भारतीय सभ्यता-संस्कृति-परंपरा, साहित्य-धर्म-दर्शन, स्वराज, स्वदेश तथा स्वाधीनता के लिए बहुत संकट का समय है। हमारी जातीय स्मृति और जातीय अस्मिता के मिटने का खतरा बढ़ गया है— क्योंकि हम नव पूंजीवाद, नव उदारवाद, उत्तर औद्योगिक समाज की ओर उन्मुख हैं। ऐसे समय में गांधी के *हिंद स्वराज* के चिंतन पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि *हिंद स्वराज* आज सर्वाधिक प्रासंगिक कृति है। □

संपर्क : ए 102/3, एम. एफ. एस. फ्लैट्स, साकेत, नई दिल्ली-110017

पेंटिंग से स्वयं भी निर्मित होता है कलाकार

चित्रकार हरिपाल त्यागी से मजीद अहमद की बातचीत

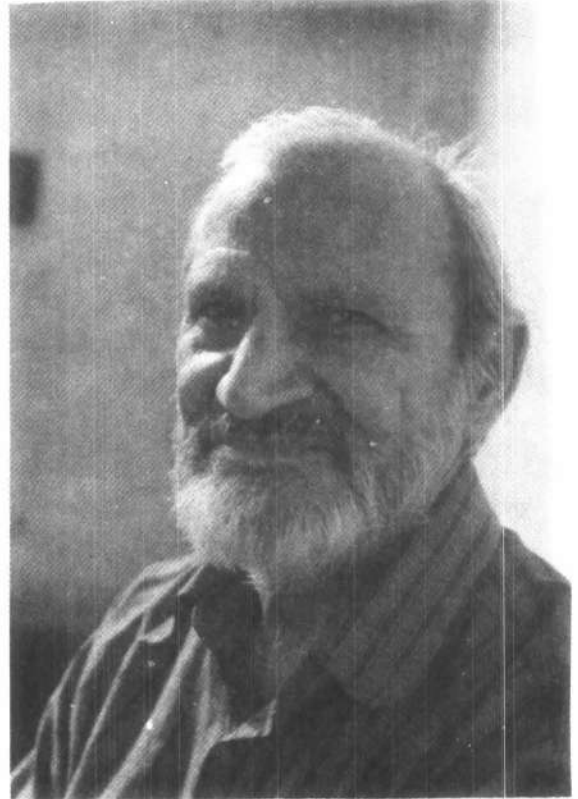
समकालीन भारतीय चित्रकला में हरिपाल त्यागी एक ऐसा नाम है, जिसने बाजार की शर्तों पर कभी काम नहीं किया। उनकी कला आदिम कला प्रवृत्तियों से गुण-प्रभाव ग्रहण करती हुई विरूपीकरण के साथ आधुनिक प्रारूप धारण करती है। हरिपाल मानवीय पीड़ा के सशक्त चित्रकार हैं। उनकी रेखाएं और रंग-प्रयोग अनायासता और सहजता का बोध कराते हुए एक अलग पहचान बनाते हैं। इस विनम्र किंतु जिद्दी कलाकार ने स्वयं अपना रास्ता खोजा है। प्रस्तुत है उनके साथ बातचीत के प्रमुख अंश:

प्रश्न : लगता है, आप उन चित्रकारों में से एक हैं जिनका अगला चित्र आज के चित्र से जन्म लेता है। चित्रों का आपसी संबंध ऐसा मजबूत और सुगठित है मानो जब आप कोई चित्र बना रहे होते हैं, ठीक तभी, रहस्यात्मक ढंग से अलग चित्र की भूमिका रच रहे होते हैं। क्यों?

उत्तर : नहीं, ऐसा तो नहीं है। अगले चित्र का रचना विन्यास या उसकी परिकल्पना का आधार बिंदु जरूरी नहीं कि उस चित्र में अंतर्निहित हो— जिस पर काम चल रहा हो या पूरा हो चुका हो। बहुत कुछ ठीक-ठीक पूर्व निर्धारित नहीं होता और किसी अंतःप्रेरणा से ही नए चित्र की शुरुआत होती है। यह परिस्थितिजन्य है। अनेक रचनात्मक बिंदु काम के दौरान ही कौंध जाते हैं और कलाकृति में चुपचाप चले आते हैं। कुछ ऐसे भी क्षण होते हैं जब कलाकार सब कुछ भूलकर स्वयं भी रचना का हिस्सा हो जाता है और पास की सभी कला-सामग्री में भी एकलव्य हो जाता है। तब वह केवल अगली कलाकृति का निर्माता ही नहीं होता, बल्कि उसके द्वारा स्वयं भी निर्मित होता रहता है। बावजूद इसके, पेंटिंग एक सचेत प्रक्रिया भी है— इससे इंकार नहीं। जहां तक चित्रों के आपसी संबंध की मजबूती और गठन का सवाल है— यह चित्रशैली, तकनीकी और विषय संबंधी एकरूपता पर ही अधिक निर्भर करता है। फिर भी, नए कामों में से पिछले अनुभवों को खारिज नहीं किया जा सकता।

आप चित्र शुरू करते हुए नए रंग की खोज कैसे करते हैं? वह क्या है जो मूल रंगों की ओर ले जाता है? अन्य रंग कैसे ग्रहण करते हैं, एक रंग को दूसरे में कैसे मिलाते हैं और रंग का चुनाव कैसे करते हैं— क्या यह सचेत क्रिया है? क्या यह कमोबेश उस सर्जनात्मक प्रक्रिया-सी नहीं, जिसमें आप किसी ऐसी वस्तु की ओर हाथ बढ़ाते हैं, जिसे जानते नहीं, लेकिन किसी अदृश्य कारण से उसकी तीव्र आवश्यकता महसूस करते हैं?

रंगों के प्रति आकर्षण एक सहज प्रवृत्ति है। चुनाव रंगों का ही क्यों, बल्कि आकारों और रेखाओं की बनावट भी किसी कलाकार के मनोविज्ञान से जुड़ी है और उसमें परिवर्तन होता ही है। इसके लिए कोई नियम तो नहीं है— रुचि-भिन्नता से इसका संबंध माना जा सकता है। चित्रों में मूड्स और रचनात्मक संतुलन की आवश्यकता को देखते हुए भी किसी वर्ण-विशेष का चुनाव होता मजीद अहमद हिंदी के सुपरिचित लेखक हैं।



है। यह स्वतःस्फूर्त या सचेत—किसी भी रूप में हो सकता है।

मैं अकादमी छाप काम से बचता हूं। नया काम अर्ध अमूर्तन शैली में है। मेरे चित्रों में कुछ स्थान ऐसे भी होते हैं, जहां रंगों को उनके संज्ञावाचक शब्द नहीं दिए जा सकते। वहां अनेक रंग छवियां अपनी पारदर्शिता में देखी जा सकती हैं और उन्हें कोई नाम देना संभव नहीं। बस, देखकर अनुभव ही किया जा सकता है। यों सपाट रंगों का प्रयोग भी होता है, लेकिन कम।

वैसे तो रंगों के सैकड़ों शेड्स आज बाजार में उपलब्ध हैं, फिर भी मुझे रंग मिलाने की जरूरत पड़ जाती है। इसके लिए मैं दो प्रचलित तरीके अपनाता हूँ—1. पैलट पर पैलटनाइफ द्वारा रंगों का मिश्रण; 2. कैनवास पर पहले से लगाए रंग में, आवश्यकतानुसार कुछ भाग छोड़ते हुए, दूसरे रंग का ब्रश या नाइफ से मिश्रण। टेक्सचर के लिए कपड़े का प्रयोग भी करता हूँ। तब कोई भी कारण अदृश्य से दृश्यमान हो उठता है। लेकिन एक छद्म मिश्रण भी होता है—इसमें शुद्ध रंगों के छोटे-छोटे बिंदु इस तरह बैठाए जाते हैं कि दूर से देखने पर तीसरे रंग की अनुभूति होती है। मैं यह प्रयोग भी करता हूँ।

त्यागी जी, जैसा कि सब जानते हैं, किसी भी पेंटिंग के तीन घटक हैं—एक, विषयवस्तु, जिसकी खोज की गई है और जिसे सुझाया गया है, किंतु उसकी व्यवस्था नहीं की गई है; दो, रूप की ज्यामिति;

और तीन, रंग। ये तीनों आपस में इस प्रकार एकाकार हैं कि इन तत्वों और आपकी प्रेरणा को आत्मसात करने पर ही चित्र को आकार तथा जीवन प्राप्त होता है। क्या आप संतुष्ट हो पाते हैं कि जो आप चाहते थे, वह दर्शकों तक संप्रेषित हो गया है?

दर्शकों की अनेक कोटियां हैं... और कोटियां कलाकारों की भी हैं। सभी कलाकृतियों के दर्शक समान नहीं होते। न यह संभव है, न जरूरी। किसी भी कलाकृति का पहला दर्शक रचनाकार स्वयं ही है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह उस अनुभव को, जो सिर्फ देखकर अनुभूत ही किया जा सकता है, शब्दों में भी कह सके। मैं समझता हूँ, इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। अनेक दर्शक कलाकृतियों के अर्थ जानना चाहते हैं—वे किसी सुंदर दृश्य को देखकर क्या वह पूछते हैं कि उसका अर्थ क्या है? इसलिए किसी कलाकृति का 'होना' ही स्वयं में अर्थवान है और कभी-कभी उसमें स्थूल अर्थ होते भी नहीं। अगर कोई दर्शक किसी चित्र में मनागत अपेक्षाएं करने लगे और खुद को ही सबसे ऊपर रखते हुए सामने लगे चित्र में अपना मानसिक प्रतिबिम्ब देखने लगे और वह वहां न हो, तो इससे वह चित्र अकलात्मक नहीं हो जाएगा। किसी पेंटिंग पर काम के दौरान चरम बिंदु पर पहुंचकर मैं काम खत्म मान लेता हूँ। यही वह क्षण है, जिस से आप तृप्ति भी कह सकते हैं या फिर आह्लाद का क्षण। मेरे लिए ये क्षण ही अधिक महत्वपूर्ण हैं, 'नया' दर्शक तैयार करता है और यही उसके लिए चुनौती और जाँचिम भरा संघर्ष है। संप्रेषणीयता का प्रश्न केवल किसी कलाकृति से ही संबंधित नहीं है, वह बाहरी कारणों पर भी निर्भर करता है। स्तर का मवाल कलाकृति और दर्शक—दोनों पर निर्भर करता है। चित्र किस स्थान पर लटकाया गया है। रोशनी तथा अंधेरे से भी संप्रेषणीयता प्रभावित होती है। क्योंकि चित्रकार विशुद्ध रूप से प्रेक्षणीय माध्यम है, इसलिए 'देखने की आंख' का विकसित होना भी जरूरी है। मेरे लिए चित्रकार सतत खोज की एक प्रक्रिया है, जिसमें तृप्ति और असंतुष्टि—दोनों अनुभव गुंथे हुए हैं और दोनों का आपसी रिश्ता अविभाज्य रूप से सूक्ष्म है।

पेंटिंग्स में आप किन-किन माध्यमों का प्रयोग करते रहे हैं?

ज्यादा काम तैल-रंगों में है। तैल-रंगों के इस्तेमाल के साथ कुछ अन्य प्रयोग भी हुए हैं, जिनका ज्यादा संबंध चित्रों की सतह से है। ड्राइंग्स सभी काली इंक से कागज पर की गई हैं। अब एक्वेलिक रंगों में, कुछ नई चीजों को शामिल करते हुए, कागज पर नए प्रयोगात्मक चित्रों की श्रृंखला तैयार करने में लगा हूँ। वाटर कलर में बहुत कम काम है। ये डाइरेक्ट पेंटिंग्स हैं, जबकि तैल रंगों में किए गए चित्र कई बैठकों में पूरे करना हूँ। कुछेक काष्ठशिल्प भी हैं। ये मैंने अपने लिए ही बनाए थे।

अधिकांश रचनाकार—चाहे वे किसी भी कला-माध्यम से संबंधित हों, अपने कामों पर आई आलोचनात्मक प्रतिक्रिया से असंतुष्ट होते हैं। अक्सर शिकायत रहती है कि उन्हें ठीक से समझा नहीं गया। किसी ने उनके काम की आत्मा तक पहुंचने की कोशिश नहीं की। अपने काम को लेकर आलोचकों की प्रतिक्रिया के बारे में आपको क्या कहना है?

हां, यह एक समस्या तो है। कारण कुछ भी हो सकते हैं—आलोचक बहुत कम हैं, कला-क्षेत्र में काम करने वाले हजारों की तादाद में हैं। अपेक्षाएं अनंत हैं, इसलिए उपेक्षा भी हो जाती है। बाजार के अपने दबाव हैं और अधिकांश कला-समीक्षाएं उसी के चलते प्रायोजित होती हैं। इसके चलते कुछ जेनुइन कलाकार अनदेखे भी रह जाते हैं। कला समीक्षकों का अभाव है—सिर्फ कुछ नाम ही अखबारों में दिखाई पड़ते हैं। अगर कला का इतिहास उठाकर देखा जाए, तो अतीत में भी अनेक कलाकारों को आलोचकों की घोर उपेक्षा का

शिकार होना पड़ा और समय के साथ-साथ वे अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते गए—दरअसल यह शोध का विषय है, जिसकी पड़ताल अभी तक नहीं हुई। लेकिन इसके चलते कला-आलोचना स्वयं संदेह के घेरे में है। इसलिए, जरूरी है कि अपने कामों के बारे में और उनसे जुड़े अनुभवों के बारे में कलाकार स्वयं अपना नजरिया विकसित करें और कुछ हद तक ऐसा हुआ भी है। इसी से तो आलोचना पद्धति भी विकसित हुई।

मुझे अपने काम पर विश्वास है और मैं बाजारवाद से अलग हूँ। फिर आत्म-प्रचार को भी मैं हल्कापन मानता हूँ। इसलिए अपने बारे में कहते संकोच होता है। चित्रकला के बारे में कभी-कभार अपने विचारों, अवधारणाओं और अनुभवों को व्यक्त तो करता हूँ, लेकिन बहुत कम। समय के साथ मेरे सोचने के ढंग में परिवर्तन भी हुआ है। आलोचकों की मिली-जुली प्रतिक्रियाएं मुझे मिलती रही हैं, लेकिन बेरुखी भी बरती गई है—इसका कारण मैं यह समझता हूँ कि मुझमें कुछ तो ऐसा है, जो कला-समीक्षकों को माफिक नहीं आता।

यदि कला के क्षेत्र में आपसे अपनी सबसे बड़ी निराशा के बारे में पूछा जाए, तो वह क्या है?

यह तो कह पाना कठिन है। लेकिन इतना बता देना जरूरी है कि निराशा से वंचित मैं नहीं हूँ। यह समय, समाज, राजनीतिक व्यवस्था की देन है। कला के क्षेत्र में कुछ शक्तें ही ऐसी हैं, जिनके दर्शन मात्र से ही, किसी को भी, निराशा हो सकती है। मैं अपनी दृष्टी आशा के टुकड़े बार-बार चुनता हूँ और उन्हें जोड़कर फिर से जिंदगी की चुनौतियों को स्वीकार करता हूँ। अतीत और वर्तमान के अनेक प्रकाश-स्तंभ ऐसे हैं, जो मुझे शक्ति देते रहे हैं।

मसलन?

बहुत प्रसिद्ध नाम नहीं हैं वे, लेकिन मेरे लिए उनका महत्व है। उन पर विस्तार से कभी लिखना है।

अरे हां, साहित्यिक विधाओं में भी तो आपने काफी काम किया है। वे कौन-कौन-सी विधाएं हैं और पेंटिंग करते हुए उन्हें अपनाने की जरूरत क्यों महसूस हुई? इसी से जुड़ा एक प्रश्न यह भी कि पेंटिंग और साहित्यिक विधाओं में आप अंतर कैसे करते हैं?

कला और साहित्य में मेरी रुचि वचन से रही। तब मैं चित्र भी बनाता था और कविताएं भी लिखता था। लेकिन धीरे-धीरे मन चित्रकला में ही रमता गया और उसने साहित्य के लिए बहुत कम जगह छोड़ी। फिर भी बीच-बीच में कुछ लिख-पढ़ लेता था। सन 1955 में, जब मैं दिल्ली आया, तब एक उपन्यास भी मेरे पास था। लेकिन संकोचवश यह मैंने किसी को दिखाया नहीं, कुछ कविताएं भी थीं, उनके प्रति मैं खुद ही उदासीन रहा। बाद में पता नहीं वे कहाँ चली गईं। सन 58 में पूरा एक साल भोपाल में बिताया। वहां दैनिक भास्कर और साप्ताहिक लोक-दर्पण में मैं कार्टूनिस्ट हुआ करता था। वहां रहते भी कुछ कविताएं लिखीं, जो आज भी याद हैं। फिर दिल्ली आने पर मैं बीच-बीच में कविताएं लिखता रहा, लेकिन छपाता नहीं था। कहानी 'दूरी' सन 65 में लिखी थी, लेकिन यह कहानी पत्रिका में छपी सन 67 में। बाकी सभी प्रकाशित सामग्री सन 80 के बाद की है। इसमें वच्चों के लिए तीन किताबें हैं, किशोरों के लिए एक लघु उपन्यास है— जो *स्पार्टकस* का संक्षिप्त रूपांतर है। कुछेक कहानियां *सारिका* में प्रकाशित हुई थीं, जो बाद में कई कहानी संकलनों में शामिल की गईं। आधे-अधूरे चार उपन्यास भी हैं। अभी एक आत्मकथात्मक उपन्यास पूरा होने को है। यह काफी काम तो नहीं है, लेकिन पूरा होने पर कम भी न होगा। मैंने कुछ संस्मरण और कला-संबंधी लेख भी लिखे हैं। चित्रकला की एकरसता को तोड़ने के लिए लिखना जरूरी लगा। लेकिन मुख्य विधा पेंटिंग ही है।

आपने साहित्यिक विधाओं और पेंटिंग में अंतर के बारे में जानना चाहा है। सबसे पहले में कुछ समानताओं के बारे में कहना चाहूंगा— अभिव्यक्ति के स्तर पर दोनों भाषाएं समान हैं। एक पेंटिंग को विजुअल पोयट्री के रूप में महसूस किया जा सकता है। नेगेटिव आर्ट को चित्र-कथा के रूप में पढ़ा जाता है। दोनों विधाओं की आलोचना में प्रयुक्त होने वाले अनेक शब्द और तत्त्व समान हैं। संसार की सभी लिपियों को प्रतीक चित्रों के विकसित रूप में देखा जाता है। फिर भी दोनों विधाओं की अलग-अलग सत्ता और प्रभाव है। वे एक-दूसरे की पूरक तो हैं, लेकिन एक-दूसरे का स्थान नहीं ले सकतीं। साहित्यिक भाषा में स्थानीयता की मजबूरी है, लेकिन पेंटिंग में ऐसा कुछ नहीं है। साहित्य में समय और भौगोलिक अंतराल को एक-दो वाक्यों में समेट सकते हैं, जबकि पेंटिंग में किसी क्षण को ही कैद कर सकते हैं। दोनों विधाओं में इस्तेमाल होने वाली सामग्री के विस्तार में मैं नहीं जाना चाहूंगा...

जब किसी पेंटर के जीवन की तुलना कवि के जीवन से की जाती है तो यह विशेष ट्रेजिक लगता है कि कवि के पास उसकी सारी कविताएं आजीवन रहती हैं जबकि एक कलाकार के पास, खासकर जो सफल हो, उसका कुछ भी नहीं बचता, जब तक वह उन्हें बेचने से मना न कर दे। आप नहीं जानते कि आपके चित्र कहां और कैसे लगे हैं। जैसे कि आपके बच्चे जो जा चुके हैं और जिनकी कोई खबर नहीं है... क्या यह अपने आप में ट्रेजेडी नहीं?

जी हां, ट्रेजेडी तो है। लेकिन सफलता का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। भला यह कैसे संभव है कि आप पैसा भी ले लें और पेंटिंग भी अपने ही पास रखें रहें। ऐसी ट्रेजेडी सभी कलाकारों को नसीब नहीं... अब एक बात और—जिस तरह नदी स्वयं अपना जल नहीं पीती, वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाता, घोड़ा अपनी सवारी खुद नहीं करता और फूल माला बनकर किसी दूसरे का ही गला तलाश करते हैं, इसी तरह सज्जन कलाकारों की संपत्ति अभिजन ही उपयोग में लाते हैं, जो कभी-कभी दुर्जन भी हो सकते हैं। ऐसी विषम स्थिति में पेंटर अपनी पेंटिंग्स के फोटोग्राफ और पारदर्शियां तो रख ही सकता है...

अच्छा, यह बताइए, कभी आपको ऐसा संदेह हुआ है कि उम्र और सयानेपन के साथ-साथ आप रूढ़िवादी होते जा रहे हैं और क्या नई प्रवृत्तियों को लेकर आपका रुख बहुत अधिक आलोचनात्मक है?

आप रूढ़िवाद को उम्र से क्यों जोड़ते हैं। पंद्रह-बीस साल का कोई तरुण या तरुणी क्या रूढ़िवादी नहीं हो सकते? मैं रूढ़ियों को खिलाफ हूं। जीवन के सभी संदर्भों में मैं नए को ही तरजीह देता हूं। तथाकथित नई प्रवृत्तियों के लिए आलोचना संभव है, लेकिन यह नए का विरोध तो नहीं है। प्रगतिशीलता या नएपन का छद्म क्या आलोच्य नहीं है?

अच्छा, चित्रों में आपकी जो औरतें हैं— उनके बारे में कुछ बताएं?

मेरे चित्रों में, आप देखेंगे, औरतें अपने स्थानीय परिवेश के साथ उभरकर आई हैं। यह परिवेश बाह्य और आंतरिक—दोनों स्तरों पर महसूस किया जा सकता है। ज्यादातर स्त्रियों की शारीरिक बनावट विरूपीकृत है और यही



हरिपाल त्यागी की एक कलाकृति

विरूपण वर्णगत भी है। इन चित्रों में कमनीयता और चालू भाव-भंगिमा को विषय न बनाते हुए स्वभाव की आत्मीयता या आंतरिक सौंदर्य को अपने रोजमर्रा के जीवन से उठाया गया है। ये सभी ऐसी आम स्त्रियां हैं जो अक्सर नजरों के सामने से गुजरती हैं, लेकिन फिर भी अनदेखी रह जाती हैं, लेकिन चित्रों में आकर ये विशिष्ट हो गई हैं।

इधर स्त्रियों को लेकर मैं एक और शृंखला पर काम कर रहा हूं, जो अलग तरह से अलग परिवेश में होंगी। इस शृंखला के कुछ चित्र पूरे हो चुके हैं।

कुछ समय से समकालीन भारतीय कला के लिए बाजार अत्यधिक अनुकूल हुआ है। बहुतों का तो यह कहना है कि भारतीय कलाकारों के लिए इतने अच्छे हालात पहले कभी न थे। इससे कुछ सवाल भी पैदा होते हैं—क्या आज देश के परिदृश्य

में कला के लिए बाजार का यह फैलाव महत्वपूर्ण बन गया है? क्या सर्जनात्मक कर्म पर बाजार किसी प्रकार का अस्वस्थ प्रभाव डाल रहा है? क्या यह कला की वास्तविक जरूरत से बना है या यह सिर्फ पश्चिमी बाजार की नकल है, जहां कला की कीमतें बहुत अधिक हैं?

कोई भी बाजार कला के अनुकूल नहीं होता, इसके विपरीत, वह कला का ही अनुकूलन करता चलता है। यह ठीक है कि अब चित्रों की खरीद-फरोख्त पहले से कहीं ज्यादा है और कुछेक कलाकारों के भाव ऊंचे हो गए हैं। बाजार विविध प्रकार की कला-सामग्री से अटा पड़ा है और पहले से कहीं ज्यादा दीर्घाएं दिल्ली में ही हैं। नवधनाढ्य वर्ग, जो पिछले कुछ सालों में तेजी से उभरा है और जिसके पास अनाप-शनाप पैसा है, कभी-कभी पेंटिंग भी खरीदता है। व्यावसायिक संस्थानों के लिए भी पेंटिंग एक जरूरत बन गई है। इसके अलावा, विश्व बाजार के खुलेपन ने, दूसरे कई क्षेत्रों की तरह, कला क्षेत्र में भी हलचल पैदा कर दी है। कलाकारों की बहुत बड़ी संख्या हरा चश्मा लगाए इस परिदृश्य को देखते हुए सक्रिय दिखाई पड़ती है। लेकिन मुझे यह लगता है कि यह सब तमाशा हमारे बुद्धिजीवियों को अपनी जातीय संस्कृति और जनजीवन से काटकर अलग कर देने के लिए है और वर्ग विशेष द्वारा योजनाबद्ध है। यह सांस्कृतिक और कलागत मूल्यों पर हमला है और यह अर्थसत्ता से ही नियंत्रित हो रहा है। बाजार हमेशा प्रचार से चमक पाता है और इसमें कूड़ा-कचरा भी मूल्यवान हो जाता है।

वे जीवन-मूल्य क्या हैं, जिन्होंने आपको प्रेरणा दी है।

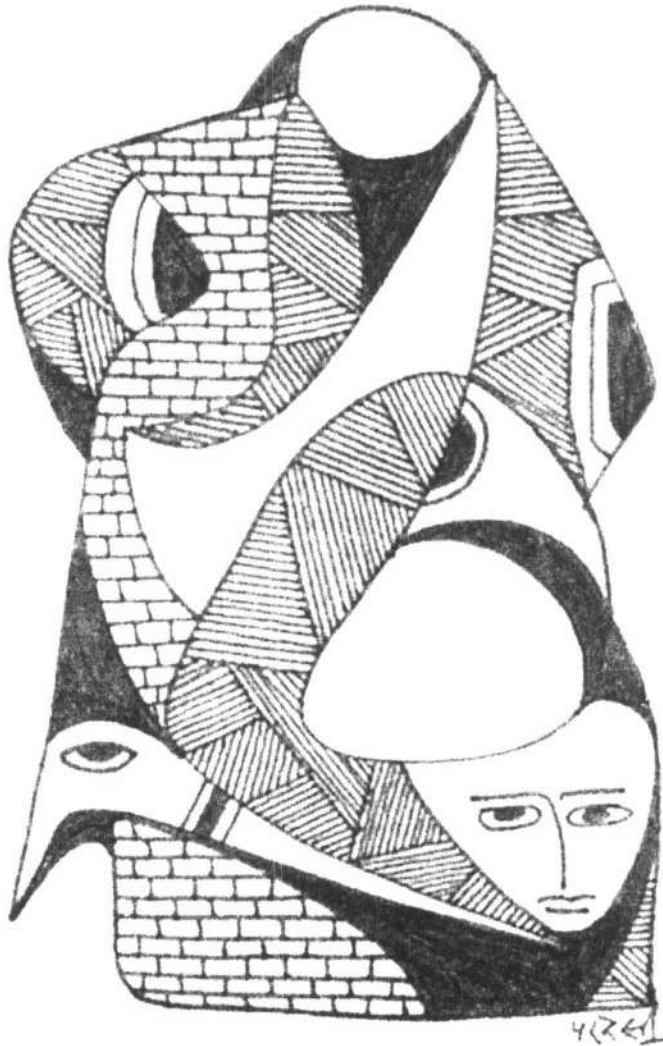
कुछ जीवन मूल्य परंपरा से मिले तो थे, लेकिन वे व्यावहारिक नहीं थे। कुछ इतने अप्रासांगिक हो गए कि उनमें से बदवू उठने लगी। फिलहाल नए मूल्यों के लिए अनुसंधान कार्य में लगा हूं। हां, इतना जरूर है कि पृथ्वी मुझे बहुत सुंदर लगती है, मैं प्रकृति और जीव-जंतुओं से सह अस्तित्व कायम रखते हुए इसे और भी सुंदर देखना चाहता हूं। कलागत मूल्यों से ही जीवन-मूल्यों की प्रेरणा ग्रहण करते हुए मैं मानवीय करुणा का चित्रकार हूं... □

संपर्क : ई-14, सादतपुर, दिल्ली-110094

जीवन भर का दुख

शैलेंद्र

रेखांकन : राजेंद्र परदेसी



शैलेंद्र सुपरिचित कथाकार हैं।

मि. पंवार घर से समय पर ही चले थे, लेकिन स्टेशन पहुंचने में उन्हें खासा वक्त लग गया। रास्ते में ट्रैफिक जाम था और रास्ता जल्दी साफ होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। आटो-रिक्शा में बैठे मि. पंवार कुछ देर शांत बैठे रहे, लेकिन धीरे-धीरे उनकी खीझ शब्दों में प्रकट होने लगी। आटो-रिक्शा वाले से कुछ इस तरह सवाल करने लगे जैसे ट्रैफिक जैम का शेड्यूल उसी ने बनाया हो। रिक्शा वाले ने उदासीन भाव से उनके एक-आध सवाल का जवाब दिया। फिर बगल के एक साइकिल-रिक्शा वाले से जान-पहचान लगाकर बातचीत में मशगूल हो गया। उसकी इस 'बदतमीजी' पर मि. पंवार को बहुत गुस्सा आया लेकिन समय और स्थिति देखकर उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा।

रुके हुए बेतरतीब यातायात से अपना ध्यान बंटाने के उद्देश्य से उन्होंने आंखें बंद कर लीं और ट्रेन के सीट रिजर्वेशन के बारे में सोचने लगे। जिस ट्रेन से वे दिल्ली जाने वाले थे, अभी उसमें रिजर्वेशन नहीं कराया था, लेकिन घर से चलने से पहले रेलवे स्टेशन फोन करके यह सुनिश्चित कर लिया था कि सीट मिल जाएगी। आटो-रिक्शा में बैठे-बैठे उन्होंने एक बार फिर अपने सेलफोन से आरक्षण कार्यालय में बात की। सीट अभी भी उपलब्ध थी। जहां एक ओर उन्हें इस बात से कुछ संतोष हुआ, वहीं दूसरी ओर ट्रेन के ठीक समय पर आने की सूचना ने उनकी परेशानी बढ़ा दी। यदि ट्रैफिक

की यही स्थिति रही, वे समय पर स्टेशन नहीं पहुंच पाए और गाड़ी छूट गई, तो? नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आज उनका दिल्ली जाना बहुत जरूरी है। उनके दामाद ने अपना प्रमोशन सेलीब्रेट करने के लिए कल एक शानदार पार्टी रखी है। उन्हें हर हाल में उस पार्टी में शामिल होना है। दो दिन पहले ही दामाद का फोन आया कि पार्टी का कार्यक्रम अचानक ही तय हुआ है।

बेटी-दामाद के अधिकार-भरे निमंत्रण के बावजूद मिसेज पंवार इतने शार्ट नोटिस पर ऐसे बड़े सेलिब्रेशन में शामिल होने की तैयारी नहीं कर सकती थीं, इसलिए उन्होंने अस्वस्थ होने का बहाना बनाकर बेटी-दामाद से माफी मांग ली। इधर मि. पंवार उस निमंत्रण से इतने उत्साहित थे कि उन्होंने ट्रेन में सीट रिजर्व कराने की भी जरूरत नहीं समझी, बस, फोन द्वारा यह मालूम कर लिया कि सीट उपलब्ध है, और तय कर लिया कि ट्रेन में बैठने से पहले टिकट ले लेंगे।

मि. पंवार एक प्राइवेट कंपनी में बड़े अधिकारी हैं। आफिस के काम से शहर में और शहर से बाहर जाने के लिए उन्हें कंपनी की ओर से सारी सुविधाएं मिलती हैं। लेकिन इस वक्त वे निजी काम से जा रहे हैं। जानते हैं कि सारा खर्चा अपनी जेब से करना होगा। पहले भी कई बार ऐसी स्थिति आ चुकी है। लेकिन ऐसे मौकों पर भी वे अपने पद की ऊंचाई और अपना स्टेटस कभी नहीं भूलते। उनके शहर से होकर कई ट्रेनें

गुजरती हैं, लेकिन वे एक खास ट्रेन से ही यात्रा करना पसंद करते हैं। इसके एक नहीं, कई कारण हैं। यह गाड़ी पूरी तरह वातानुकूलित है। दूसरी गाड़ियों की बनिस्बत बहुत कम समय में गंतव्य तक पहुंचा देती है। यात्रियों को सीट पर बैठे-बैठे मिनरल वाटर से लेकर चाय, नाश्ता और भोजन तक मिल जाता है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि यह गाड़ी यात्रियों को कुछ 'विशिष्ट' होने का अहसास कराती है, क्योंकि आम आदमी की जेब उसे इस गाड़ी से यात्रा करने की अनुमति नहीं देती। मि. पंवार हमेशा इसी 'संपन्न वर्ग की रेलगाड़ी' से यात्रा किया करते हैं।

टिकट अब धीरे-धीरे सरकने लगा था। मि. पंवार ने कुछ राहत महसूस की। घड़ी में समय देखा और आटो वाल को और तेज चलने का आदेश दिया। स्टेशन पहुंचकर वे सीधे टिकट-खिड़की की ओर लपके। वहां लोगों की लंबी कतार लगी थी। लोग उतावली दिखा रहे थे, लेकिन टिकट बाबू के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। यात्रियों की उद्विग्नता की परवाह किए बिना वह बाबू सुलभ गति से अपनी झूठी पूरी कर रहा था।

मि. पंवार अभी ब्यू में ही खड़े थे कि कुछ दूरी पर ट्रेन की सीटी सुनाई दी। स्पष्ट था कि अगले कुछ क्षणों में ट्रेन स्टेशन पर आने वाली है। उन्होंने आंखों से ब्यू की लंबाई नापी और हिसाब लगाया—ट्रेन स्टेशन पर आ ही गई समझो, और यहां सिर्फ पांच मिनट रुकेंगी। प्लेटफार्म इतना नजदीक नहीं है। यानी टिकट लेना और गाड़ी पकड़ना—इनमें से अब एक ही काम हो सकता है। क्षणांश में उन्होंने तय कर लिया कि वे अपनी फेवरेट गाड़ी नहीं छोड़ेंगे। टिकट अभी नहीं लिया तो भी कोई चिंता नहीं। गाड़ी में टिकट बनवा लेंगे, भले ही कुछ अतिरिक्त पैसे देने पड़ जाएं। लेकिन उन्हें हर हाल में इसी गाड़ी से जाना है।

ट्रेन प्लेटफार्म पर आ चुकी थी। मि. पंवार पुल से उतरकर सबसे नजदीक वाले डिब्बे में घुस गए। सोचा, इसमें कोई सीट नहीं मिली तो अंदर ही अंदर डिब्बों की ओर बढ़ जाएंगे। लेकिन कहीं और जाने की नौबत नहीं आई। डिब्बे में दो सीटें खाली पड़ी थीं। उन्होंने झटपट एक पर कब्जा जमा लिया। सांस की गति नार्मल होने के बाद उन्होंने साथ बैठे दो यात्रियों और फिर पूरे डिब्बे पर नजर डाली। चारों ओर अपने जैसे स्टेटस वालों को देखकर उनके चेहरे पर सुकून दिखाई देने लगा।

ट्रेन अभी थोड़ी ही दूर गई होगी कि उन्हें नींद आने लगी। हमेशा ही ऐसा होता है। कार या

ट्रेन में सफर करते हुए उन्हें नींद बहुत आती है। लेकिन आज वे कुछ कांशस थे, इसलिए नींद के बावजूद बीच-बीच में जबर्दस्ती आंखें खोलकर आगे-पीछे देख लेते थे। जाहिर था कि वे टिकट चैकर की राह देख रहे थे। टिकट चैकर एकाएक आकर उनसे टिकट मांगने लगे और टिकट न होने पर इधर-उधर के सवाल करने लग जाए, यह उनके अहं को स्वीकार नहीं था। इसलिए वे खुद उसे बुलाकर टिकट बनवाना चाहते थे। डिब्बे में यात्रियों और पेंट्री कार के स्टाफ की बराबर आवाजाही हो रही थी, लेकिन टिकट चैकर कहीं नजर नहीं आ रहा था। शायद अभी वह किसी दूर के डिब्बे में होगा और यहां तक आने में उसे समय लग सकता है—अपने आप को यह तसल्ली देते हुए वे सीट पर यथासंभव आड़े होकर अलसाने लगे। अगले ही क्षण उनकी आधी बंद आंखें पूरी बंद हो गईं।

अचानक एक आवाज ने उन्हें जगा दिया। नींद के बावजूद वे समझ गए कि टिकट चैकर आ गया है।

“मैं तो कब से आपका इंतजार...” उनका वाक्य अधूरा ही रह गया। सामने टिकट चैकर नहीं, बल्कि पेंट्री कार का वेटर चाय-स्नैक्स की ट्रे लिए खड़ा था। चाय ने तुरंत उनके जेहन से टिकट चैकर को निकाल दिया। मन ही मन अपनी फेवरेट ट्रेन की कार्य-कुशलता की प्रशंसा करते हुए वे चाय सिप करने लगे।

एक कप पीने के बाद वे थर्मस में बची चाय कप में डालने ही लगे थे कि कुछ सोचकर रुक गए। उन्होंने सामने लगी घड़ी पर नजर डाली। हिसाब लगाया कि ठीक डेढ़ घंटे बाद डिनर आ जाएगा। उस समय भूख नहीं होगी तो खाने का मजा नहीं आएगा। बची हुई चाय और समोसे को घूरते हुए उन्हें ट्रेन में डिनर टाइम पर क्रोध आने लगा। भला जिस व्यक्ति ने अभी-अभी चाय पी है, उसे इतने कम अंतराल पर भूख कैसे लग जाएगी? यह तो खाने का नाम-भर करना होगा! अरे भई, दूर से चले आ रहे यात्रियों को अवश्य तय समय पर डिनर सर्व कीजिए, लेकिन जो अभी-अभी गाड़ी में चढ़े हैं, उनके बारे में भी सोचिए। क्या उन्हें थोड़ा रुककर डिनर नहीं खिलाया जा सकता? माना कि उनके स्टेशन से इने-गिने लोग इस गाड़ी में चढ़ते हैं, लेकिन रेलवे के लिए तो हर यात्री महत्वपूर्ण है। पता नहीं, रेलवे अधिकारियों का ध्यान कभी इस ओर क्यों नहीं गया? मि. पंवार को अपनी फेवरेट ट्रेन में पहली बार कोई दोष नजर आ रहा था।

ट्रे में उपेक्षित पड़े समोसे का एक टुकड़ा तोड़कर मुंह में रखते ही न जाने उन्हें कैसी अनुभूति

हुई कि वे पूरा समोसा खा गए। फिर बची हुई चाय के साथ न्याय करने लगे। तय कर लिया कि डिनर नहीं करेंगे। वेटर खाने की ट्रे लेकर आएगा तो उसकी ओर देखे बिना ही ट्रे वापस ले जाने का इशारा कर देंगे। इस बात की भी परवाह नहीं करेंगे कि डिनर के पैसे उनके टिकट में पहले ही जोड़ दिए गए हैं।

टिकट! अचानक उन्हें ध्यान आया कि उनके पास टिकट नहीं है। यह गलत हो रहा है, उन्होंने सोचा। लेकिन कुछ कर नहीं सके। टिकट चैकर का कहीं पता नहीं था। कब आएगा, यह भी नहीं मालूम। यह टिकट का झमेला निपट जाता तो निश्चित हो जाते। जब तक टिकट चैकर नहीं आ जाता, बिना टिकट होने की यह तलवार उनके सिर पर बराबर लटकती रहेगी।

वैसे भी मि. पंवार काम पैंडिंग रखने के बहुत खिलाफ थे। आफिस में उन्होंने कड़े निर्देश जारी कर रखे थे। काम में जरा-सी देर होने पर स्टाफ को वार्निंग इश्यू हो जाती थी। लेकिन यहां वे बॉस नहीं हैं। यहां कुछ नहीं कर सकते। टिकट चैकर से देर से आने की वजह तक नहीं पूछ सकते। मि. पंवार स्वयं को असहाय महसूस करने लगे। इसका एक कारण यह भी था कि वे लघुश्रम के लिए जाना चाहते थे, लेकिन टिकट चैकर के किसी भी क्षण आ जाने की आशंका ने रास्ता रोक रखा था। उधर आवेग था कि जोर मारता जा रहा था। आखिर उन्हें उठना ही पड़ा। टायलेट से यथाशीघ्र वापस आकर उन्होंने बगल वाली सीट पर बैठे सज्जन से जानना चाहा कि क्या इस बीच टिकट चैकर आया था। फिल्म मैगजीन में तल्लीन उन सज्जन ने उनकी ओर देखे बिना ही नकारात्मक ढंग से फिर हिला दिया। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। मैगजीन पर एक नजर डालते हुए उन्होंने मुंह बिचकाया। फिर अपने बैग से *विजनेस वर्ल्ड* निकालकर उसके पेज पलटने लगे।

गाड़ी तेज रफ्तार से आगे बढ़ती जा रही थी। दो बड़े स्टेशन निकल चुके थे। मि. पंवार इस बीच एक झपकी और ले चुके थे लेकिन टिकट चैकर ने अभी तक दर्शन नहीं दिए थे। हां, नींद के इस दौर का एक असर यह हुआ कि जागने पर उन्हें टिकट का ध्यान नहीं आया। दरअसल नींद में वे अपने दामाद की पार्टी में पहुंच गए थे जहां दामाद उनका परिचय अपने बॉस से करा रहा था। उनके पद और स्टेटस को वजनदार शब्दों में बयान कर रहा था। नींद खुलने पर उन्हें बॉस का चेहरा याद नहीं रहा लेकिन दामाद के वजनदार शब्द देर तक गुदगुदाते रहे। उन्हें अपना दामाद बहुत पसंद है। अक्सर मित्रों से उसकी तारीफ करते हुए कहते हैं—‘यतींद्र (दामाद)

के पेंट्स बहुत खुशकिस्मत हैं जिनका ऐसा सुशील और होनहार बेटा है।' अलबत्ता यह कभी नहीं कहते कि ऐसा सुशील और होनहार दामाद मिलना उनकी भी खुशनसीबी है।

अभी वे सपने के री-प्ले में खोए हुए थे कि पैट्री के वेटर ने सूप लाकर सामने रख दिया। साथ ही उनसे वेज-नानवेज डिनर की च्वायस भी पूछने लगा। डिनर उन्हें लेना नहीं था फिर भी पूछ लिया—“नानवेज में क्या है?”

“चिकन है, सर!”

चिकन का नाम सुनते ही उनकी मरी हुई भूख एकाएक जीवित हो उठी। रेलवे का चिकन उन्हें बेहद पसंद है। घर में बना चिकन उतना स्वादिष्ट नहीं होता जितना यहां का चिकन होता है। वैसे भी चलती ट्रेन में नानवेज खाने का अपना ही मजा है। डिनर न लेने का निश्चय त्यागकर उन्होंने वेटर को नानवेज लाने के लिए कह दिया। फिर सूप गटकने लगे। कुछ देर बाद एकाग्रचित होकर भोजन किया और आइसक्रीम का कप खाली किया। अपनी मनपसंद ट्रेन के सफर का असली सुख उन्हें इसी समय मिल रहा था।

पेट भरा हुआ था। दो बार नींद ली जा चुकी थी। मैगजीन के सारे पेज पलटे जा चुके थे। लेकिन टिकट चैकर नहीं आया। न ही अब उसके आने की कोई उम्मीद थी। मि. पंवार के लिए भी टिकट का प्रसंग ‘बीत गई सो बात गई’ का रूप ले चुका था। इसे गुजरे जमाने का अदना-सा वाक्या मानकर वे अपने जेहन से पूरी तरह उतार चुके थे। उनका ध्यान इस समय अगले दिन होने वाली पार्टी में लगा था, जिसकी भव्यता की कल्पना से वे रोमांचित हो रहे थे। इस बात का संकेत मुस्कुराहट में जल्दी-जल्दी फैलते होठ दे रहे थे।

ट्रेन किसी स्टेशन पर रुकी तो उनकी सुखद कल्पना में व्यवधान आ गया। सामने स्टेशन का साइनबोर्ड चमक रहा था। दिल्ली अब दूर नहीं है, दामाद को यह बताने के लिए वे सेलफोन के नंबर दबाने वाले ही थे कि प्लेटफार्म पर एक काले कोट और टाई वाले व्यक्ति को देखकर उंगली फोन के पहले अंक पर ही रुक गई। उन्हें लगा, काले कोट वाला शायद टिकट चैकर है। उन्होंने गौर से उसे देखने की कोशिश की लेकिन व्यक्ति कुछ दूर खड़ा था और वहां रोशनी भी कुछ कम थी। ‘नहीं, वह टिकट चैकर नहीं हो सकता।’ उन्होंने अपने आप से कहा। फिर भी उस ओर बराबर नजर गड़ाए रहे।

काले कोट वाला व्यक्ति किसी से बात करता हुआ उनकी कोच की ओर आया तो उनकी नजर

उसके कोट पर लगे बैज पर पड़ी। ‘ओह यस, टिकट चैकर ही है।’ वे मन ही मन बोले। नए सिरे से विदाउट टिकट होने का अहसास उन्हें परेशान करने लगा। वे बुरी तरह झुंझला उठे। ‘अब तक ये जनाब, पता नहीं, कहां मस्ती मारते रहे और अब जब सफर खत्म होने को आ रहा है तो ये अपनी एफिशिएंसी दिखाने चले हैं।’ काट नानसेंस! अगर मैं पिछले स्टेशन पर उतर जाता, तो? और क्या मालूम, कोई विदाउट टिकट यात्री उतर ही गया हो! ये है इनकी एफिशिएंसी! आने दो इन जनाब को अंदर। टिकट तो मैं बनवा लूंगा लेकिन इनकी वो क्लास लूंगा कि आज के बाद ढंग से ड्यूटी करना सीख जाएंगे।’ मि. पंवार अचानक स्वयं को किसी कंपनी का विग बॉस और टिकट चैकर को कंपनी का एक मामूली आफिशियल समझने लगे। वे अपनी सीट पर तनकर बैठ गए।

गाड़ी सरकने लगी थी। उत्सुकतावश उन्होंने कोच के दोनों दरवाजों की ओर देखा और टिकट चैकर को न पाकर जैसे उसे बाहर की ओर ढूँढ़ने लगे। देखा, काले कोट वाला अपने साथी से गप्पें लगाता हुआ वापस स्टेशन की दिशा में जा रहा था। मि. पंवार को यह सब एक पहेली-सा लगा लेकिन इस पहेली को सुलझाने के लिए उन्होंने दिमाग पर जोर देना उचित नहीं समझा। हां, उनकी झुंझलाहट सिरे से गायब हो चुकी थी। फिर से दामाद को फोन करने का ध्यान आया। तभी उनका फोन बज उठा। दामाद फोन कर रहा था।

‘दामाद हो तो ऐसा केयरिंग!’ उन्होंने मुग्ध होकर अपने आप से कहा। फिर दामाद से बातें करने लगे। बताया कि ट्रेन सही समय पर है और निर्धारित समय पर नई दिल्ली पहुंच जाएगी। बात करते हुए वे बहुत उत्साहित लग रहे थे। लेकिन अगले ही क्षण उनका उत्साह फीका पड़ गया। दरअसल दामाद उनकी कोच का नंबर पूछ रहा था ताकि हमेशा की तरह उन्हें गाड़ी में ही रिसीव कर ले। उन्हें लगा, जैसे उनसे कोच नंबर नहीं पूछा जा रहा, बल्कि स्टेशन के एग्जिट गेट पर खड़ा टिकट क्लेक्टर उनसे टिकट मांग रहा है। कोच का नंबर उन्हें पता ही नहीं था, इसलिए कोई जवाब नहीं दिया। चुप्पी साध ली। उधर से लगातार ‘हेलो, पापा, हेलो!’ की आवाज आती रही। दूसरा कोई चारा न देखकर उन्होंने फोन काट दिया। साथ ही स्विच आफ भी कर दिया। जैसे किसी से बात कर रहे हों, इस अंदाज में फोन कान से लगाकर वे सीट से उठकर दरवाजे की ओर बढ़ गए। फोन कान से बराबर सटा रहा। उसी मुद्रा में उन्होंने दरवाजे के पास वाली सीट पर बैठे युवक से कोच का नंबर पूछा। युवक ने पहले

उन्हें ऐसे देखा जैसे वे कोई अजूबा हों। फिर ‘सीनियर सिटीजन’ पर तरस खाकर नंबर बता दिया। अपनी सीट की ओर वापस आते हुए उन्होंने फोन स्विच आन किया। दामाद का नंबर मिलाया। कोच नंबर बताने के साथ-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि नेटवर्क न मिलने की वजह से फोन बीच में बंद हो गया था।

स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही दामाद को सामने खड़ा देखकर उन्हें बहुत खुशी होती है। लेकिन आज उसका आना परेशानी का कारण बनने जा रहा था। उनके पास टिकट नहीं है। अकेले होने पर स्टेशन से बाहर निकलने में दिक्कत नहीं होगी। इतना भरोसा उन्हें अपने ऊपर है। लेकिन दामाद की मौजूदगी में वह आत्मविश्वास डगमगा सकता है। गेट पर टिकट क्लेक्टर ने कुछ भांपकर उनसे टिकट मांग लिया तो वे सफाई में क्या दलील देंगे? अपनी सही नियत और रेलवे की लापरवाही कैसे साबित करेंगे? उनके खिलाफ जो कार्रवाई होगी सो तो होगी ही, दामाद की नजरों में वे हमेशा के लिए छोटे हो जाएंगे। यह बहुत बुरा होगा। बहुत ही बुरा!...फ्लैश फारवर्ड के दृश्य से आतंकित उनका चेहरा उस वातानुकूलित डिब्बे में भी पसीने से भर उठा।

मिनरल वाटर की बोतल का बचा-खुचा पानी गटककर वे कुछ संयत हुए और आने वाले संकट से मुक्ति पाने का उपाय सोचने लगे। क्यों न कोई ठोस वजह बताकर दामाद को स्टेशन पर आने से मना कर दिया जाए? लेकिन बहुत दिमाग लगाने पर भी उन्हें ऐसी कोई वजह नहीं सूझी। अच्छा, यदि उसे सीधे-सीधे कह दिया जाए कि उन्हें रिसीव करने की जरूरत नहीं? दिल्ली से वे अच्छी तरह परिचित हैं। टैक्सी लेकर घर पहुंच जाएंगे।...नहीं नहीं! इस तरह भी बात नहीं बनेगी। दामाद इसे उनका संकोच समझेगा और ससुर के प्रति उसका प्रेम और तीव्र हो उठेगा। पूरी बात बिना सुने ही वह स्टेशन दौड़ा चला जाएगा। उसे रोकने का कोई और उपाय? ‘नहीं, अब कोई उपाय नहीं सूझ रहा है!’ वे बुदबुदाए—‘अब जो होना है सो हो। देखते हैं, आज भाग्य में क्या लिखा है?’ वे अचानक भाग्यवादी हो उठे।

नई दिल्ली स्टेशन आ गया था। यात्रा का अंतिम पड़ाव होने के बावजूद लोग ट्रेन से उतरने की ऐसी जल्दी मचा रहे थे जैसे ट्रेन छूटने वाली हो। मि. पंवार को यह उतावली अच्छी नहीं लगती। वे भीड़ छंटने के बाद आराम से उतरना पसंद करते हैं। लेकिन आज अपनी पसंद दरकिनार करके वे

पृष्ठ 41 पर जारी

बेमिसाल खूबसूरती का नाम स्वित्जरलैंड

हवा में कुछ नमी-सी मालूम पड़ी। कहां दिल्ली की भीषण गर्मी से आए थे और यहां सर्दी मालूम पड़ रही थी। चारों ओर इतनी हरियाली थी कि धरती पर एक इंच जगह भी हरियाली से खाली नहीं थी। हवा में भीनी-सी खुशबू भी थी। यह पाइन के वृक्षों की थी। सड़कों पर नैनो जैसी छोटी-छोटी कारें दौड़ रही थीं। खूबसूरत देश स्वित्जरलैंड की यात्रा का विवरण प्रस्तुत कर रही हैं क्षमा शर्मा

बचपन में अक्सर कहा जाता था कि अमीर लोग अपनी छुट्टियां स्वित्जरलैंड में बिताते हैं। यह कि बीमार पड़ने पर वहां जाते हैं। कमला नेहरू को भी नेहरू जी वहीं ले गए थे। स्वित्जरलैंड इस धरती का स्वर्ग है, आदि बातें।

जब बेटे नक्षत्र और बहू पूर्णिमा की नियुक्ति वहां संयुक्त राष्ट्र में हो गई तो उन्होंने चुपके से ही हमें (मैं और पति डा. सुधीश पचौरी) वहां बुला भेजा।

16 अगस्त की सुबह जब हम एअरपोर्ट जाने के लिए निकले, उस समय धुंधलका था। दिल्ली किसी हलचल से मुक्त थी। सड़कें वीरान, विराट और दूर तक फैली दिखती थीं। एअरपोर्ट पर चैक-इन के बाद बैठे तो लगा, बहुत थक गए हैं। कॉफी पीने गए तो होश ही उड़ गए। दो कॉफी सत्तर रुपये की। कॉफी के साथ घर से लाए परांठे खाने लगे। सामने एक महिला जिसने सिर पर स्कार्फ बांध रखा था और एक पुरुष हमें खाते देख रहे थे। आज तो ये दिन भी नहीं रहे कि मैं उन्हें अपने साथ खाने के लिए आमंत्रित कर लूं। न जाने कोई क्या समझ ले!

जिस वक्त लुफ्थांसा एअरलाइंस के एक बहुत बड़े जहाज ने उड़ान भरी, उस वक्त नौ बजे थे। जहाज में खिड़की के पास की सीट से नीचे की दुनिया बहुत अजनबी, बहुत लुभावनी और आकर्षक दिखती है।

हम स्वित्जरलैंड के एक मशहूर शहर जेनेवा जा रहे थे। यहीं संयुक्त राष्ट्र का कार्यालय है। यहीं दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियों के दफ्तर हैं। संयुक्त राष्ट्र में काम करने वाले अपने बेटे नक्षत्र और डब्ल्यू.एच.ओ. में काम करने वाली बहू पूर्णिमा के पास जाने, उनके पास रहने का उत्साह भी कोई नहीं था।

जहाज जिस वक्त अफगानिस्तान के ऊपर से गुजर रहा था, उस वक्त चारों ओर मीलों तक सिर्फ पहाड़ दिखाई देते थे। कहीं हरियाली का नामोनिशान नहीं था। दूर-दूर तक इतना निर्जन! देर तक हम सिर्फ पहाड़ों को देखते रहे। जब जहाज यूरोप से उड़ा तो ऐसा लगता था कि जमीन पर बड़ी-बड़ी बेतरतीब आकारों की हरी-पीली-ब्राउन टाइल्स बिछी हों। चारों ओर हरियाली ही हरियाली नजर आती थी। ये रंग-बिरंगी टाइल्स क्या हैं, इसका रहस्य समझ में नहीं आ रहा था।

म्यूनिख हवाई अड्डे पर जब जहाज उतरने लगा तो कई तरह के अहसास होने लगे। चारों तरफ से कितना हरा था यह शहर! ऊंची-ऊंची इमारतों का जाल भी यहां नजर नहीं आ रहा था। हरी-पीली और रंग-बिरंगी टाइल्स का



स्वित्जरलैंड के पहाड़ों के बीच लेखिका, उनके पति तथा पुत्र व पुत्रवधू

रहस्य भी समझ में आया। दरअसल ये सब पेड़-पौधे थे जो हर जगह तरतीब से लगे हुए थे।

बच्चों ने हमसे कहा था कि जर्मनी में तगड़ी चैकिंग होती है, इसलिए अपने साथ वाले बैग में वही सामान लाएं जो जरूरी हो। म्यूनिख से हमें जेनेवा जाने वाली दूसरी फ्लाइट लेनी थी। म्यूनिख एअरपोर्ट पर हमें घुसते ही बताया गया था कि हमें किधर जाना है, मगर फिर भी हम भटक गए। यहीं हमें एक दुकान पर खड़े दो भारतीय मिले जिन्होंने बिल्कुल शुद्ध हिंदी में हमें बताया कि हमें किधर जाना है। जब हम चैक-इन के लिए पहुंचे तो वहां हर चीज को जर्मन सीक्योरिटी ने खुलवाकर देखा। लेकिन उनका व्यवहार बहुत मीठा था।

अब हमें जेनेवा ले जाने वाले जहाज का इंतजार था। हमारी घड़ियों में भारतीय समय के अनुसार साढ़े पांच बजे थे जबकि म्यूनिख एअरपोर्ट पर लगी घड़ी दो बजा रही थी। बहुत जोर से प्यास लगी थी मगर पानी कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। सुधीश जी पानी देखने गए और अपना फोन मेरे पास छोड़ गए। देर तक नहीं लौटे तो डर लगने लगा। उनका पासपोर्ट भी मेरे ही पास था। दूसरा देश! क्या पता, कोई पकड़ ही ले! घबराहट में मैंने काकी को मुंबई फोन किया। वह भी घबराने लगीं। तभी वह दूर से आते दिखे तो मैंने फोन काट दिया। सचमुच पराया देश चाहे जितना सुंदर हो, मगर वहां की अजनबियत और अकेलापन इतना होता है कि मामूली चीजें भी डराने लगती हैं। जेनेवा जाने वाली फ्लाइट में बैठे तो फिर प्यास की याद आई। एअर होस्टेस को इशारा किया तो वह पानी ले आईं।

नई दिल्ली से लुफ्थांसा की फ्लाइट में एक-एक अनाउंसमेंट हिंदी-अंग्रेजी

डा. क्षमा शर्मा जानी-मानी लेखिका हैं।

में होता था, मगर इस फ्लाइट में सब जर्मन और फ्रांसीसी बोल रहे थे। उड़ान भरने के पैंतीस-चालीस मिनट बाद ही हमें 'जिनीव' शब्द सुनाई दिया। सुधीश जी बोले— "शायद हम जेनेवा पहुंच गए।"

हमारे बाएं तरफ आल्प्स की बर्फीली चोटियां लहरा रही थीं। नीचे एक नदी-सी बहती दिखाई दी। बाद में पता चला कि वह सौ किलोमीटर लंबी जेनेवा झील है।

जेनेवा एअरपोर्ट पर उतरे तो दूर ही शीशे के पीछे पूर्णिमा हाथ हिलाती दिखाई दी। नक्षत्र भी खड़ा नजर आया। वहां ट्रालीज एक-दूसरे से बंधी हुई थीं। नक्षत्र यह देख रहा था। उसने फोन करके कहा— "यहां इंडियन एअरपोर्ट की तरह ट्रालीज फ्री में नहीं मिलती हैं। दो सी.एच.एफ. देने पड़ते हैं।" (एक सी.एच.एफ. लगभग चालीस रुपये के बराबर था उन दिनों) लेकिन हमारे पास तो सी.एच.एफ... थे नहीं। तब नक्षत्र ने गार्ड को दो सी.एच.एफ. देकर हमें देने को कहा। सामान लेकर बाहर निकले तो हवा में कुछ नमी-सी मालूम पड़ी। कहां दिल्ली की भीषण गर्मी से आए थे और यहां सर्दी मालूम पड़ रही थी। चारों ओर इतनी हरियाली थी कि धरती पर एक इंच जगह भी हरियाली से खाली नहीं थी। हवा में भीनी-सी खुशबू भी थी। यह पाइन के वृक्षों की थी। सड़कों पर नैनो जैसी छोटी-छोटी कारें दौड़ रही थीं। सड़कें बहुत कम चौड़ी थीं और सड़कों के दोनों ओर गाड़ियां भी खड़ी थीं। पूछने पर पता चला कि यहां पार्किंग स्पेस भी बहुत कम है। इसलिए घंटों के हिसाब से पार्किंग स्पेस दी जाती है। कहीं-कहीं तो सड़क के बीचोंबीच पार्किंग स्पेस बनाई हुई थी।

घर पहुंचे तो खिड़की के सामने हरियाली से भरा बड़ा-सा पहाड़ नजर आया। पूर्णिमा ने बताया कि जब यह यहां आई थी, उस समय यह बर्फ से सफेद था। अभी शाम के छह बजे थे और सूरज ऐसे चमक रहा था जैसे दोपहर हो। पता चला कि रात दस बजे तक सूरज ऐसे ही खिला रहेगा। एअरपोर्ट पास होने की वजह से हर पल कोई-न-कोई जहाज उड़ रहा था। तरह-तरह के जहाज— लाल-पीला-नीला-काला, सफेद-ग्रे जैसे। इतने जहाजों को हर वक्त आते-जाते देखकर दुनिया की गति का पता चलता था। जैसे-जैसे रात हुई तो पहाड़ अंधेरे में एकमएक हो गया। दूर-दराज जलती रोशनियां आसमान में खिले सितारों-सी लगती थीं। दूर आसमान में लालटेन-सा चमकता बृहस्पति नजर आ रहा था। इसे देखकर यहां मैं अपने बेटे को याद करती हूं। इसका नाम भी मैंने बेटे के घर के नाम पर बल्लू रख छोड़ा है। जेनेवा में जहां ये लोग रहते हैं, उस कॉलोनी का नाम लिनियो है। यहां आठ हजार फ्लैट्स हैं और डेढ़ सौ नेशनलिटीज यहां पर रहती हैं। जेनेवा के भीतर यह एक आत्मनिर्भर नगर-सा है। मीलों लंबे पार्कों और ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से घिरे इस नगर में अपना स्कूल, पोस्ट ऑफिस, बैंक, बाजार— सब कुछ है। प्रवेश द्वार की चाबी हर व्यक्ति के पास है। हर व्यक्ति अपनी चाबी से दरवाजा खोलकर लिफ्ट तक जाता है और दरवाजा अपने आप बंद हो जाता है।

यहां लोगों को कुत्ते पालने का बहुत शौक है। यहां बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे कुत्ते दिखाई देते हैं। कई बार तो एक-एक आदमी के हाथ में तीन-तीन कुत्तों की डोरियां दिखाई देती हैं। यही नहीं, महिलाएं अपने बच्चों की ग्राम से कुत्ते की डोरी बांध लेती हैं। कुत्ता ग्राम की गति से साथ-साथ दौड़ता रहता है। यहां कुत्तों के स्विमिंग पूल भी अलग से हैं। कुत्ते अपने मालिकों के साथ बस, ट्रेन— यहां तक कि रेस्टोरेंट में जाते हैं। लेकिन कुत्ते के भौंकने पर तगड़ा जुर्माना है। इसलिए कुत्तों को किसी पर न भौंकने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। यहां पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को सिगरेट पीने का काफी शौक है। सिगरेट के खिलाफ कोई अभियान भी चलाया जाता नहीं दिखता।

हर जगह स्त्रियां सिगरेट पीती दिखती हैं। सबसे ज्यादा अफसोस तो यह देखकर होता है कि ग्राम में नन्हे-नन्हे बच्चे लेते होते हैं और उनकी माताएं धुआं छोड़ती दिखती हैं।

स्विटजरलैंड के नागरिकता के नियम बहुत कठोर हैं। यहां की आबादी मात्र सत्तर लाख है। इसे वे बढ़ने नहीं देते। विदेशियों को नौकरी न होने पर दो महीने से ज्यादा रहने की इजाजत नहीं है। यहां रहने के लिए फ्रेंच भाषा भी सीखनी पड़ती है। आम तौर पर लोग फ्रेंच या जर्मन बोलते हैं। अंग्रेजी को बहुत हेय दृष्टि से देखते हैं। अंग्रेजी जानने पर भी कहते हैं— नो इंग्लिश। चूंकि स्विटजरलैंड की आमदनी का एक बड़ा जरिया टूरिज्म भी है इसीलिए बसों और गाड़ियों में फ्रेंच के अलावा अंग्रेजी में भी एनाउंसमेंट होते हैं।

16 अगस्त को हम पहुंचे थे और 17 को पूर्णिमा ने जरमैट जाने का प्रोग्राम बनाया। जेनेवा से जरमैट साढ़े तीन सौ किलोमीटर दूर है। यहां से आल्प्स पर्वतमाला की मेटर होर्न चोटी के पास पहुंचा जा सकता है।

अगले दिन हम जेनेवा रेलवे स्टेशन पहुंचे। स्टेशन वेहद साफ-सुथरा था। यहां एक परिवार का बच्चा चिप्स खा रहा था। उसके हाथ से एक चिप्स नीचे गिर गया। अचानक एक गौरैया लपकती हुई आई और चिप्स चोंच में दबाकर दूर उड़ गई। एक दूसरी गौरैया उसका पीछा करने लगी। बच्चे ने यह देखा तो उसने कई और चिप्स नीचे गिरा दिए। उन पर गौरैया और कई रंगों के कबूतरों का झुंड टूट पड़ा। वे आपस में लड़ने भी लगे। यहां तरह-तरह के रंगों के कबूतर भी नजर आए। बस स्टाप और रेलवे स्टेशन पर कंप्यूटराइज्ड सिस्टम है। बसों या रेलों में कोई टिकट चेक करने नहीं आता फिर भी लोग ईमानदारी से टिकट खरीदते हैं।

हमें जेनेवा से विस्स जाना था। रेल में बैठने के बाद चारों ओर का नजारा अद्भुत था। दूर-दूर तक सिर्फ हरा ही हरा नजर आता था। गाड़ी के साथ-साथ जेनेवा झील चल रही थी। झील का पानी एकदम नीला। इसी तरह जेनेवा शहर के बीचों-बीच भी बहती दो नदियों का पानी बिल्कुल साफ है। तल की मछलियों तक को देखा जा सकता है। हमारे यहां की तरह नदियों को कूड़ेदान नहीं बना दिया गया है।

खैर, इतनी हरियाली, हरियाली से भरे पहाड़ों से गिरते झरने, घाटियों से गुजरती ट्रेन, दूर पहाड़ी पर झांकता चर्च— गाड़ी दौड़ती जा रही है। तभी दो लोगों के साथ एक बड़ा झबरेला कुत्ता आता है और वह उनके पांवों के पास बैठकर आराम से सो जाता है। आते-जाते लोगों को उससे डर भी नहीं लगता।

विस्स उतरकर चारों ओर बर्फीली चोटियों के सिरे दिखाई देने लगते हैं। तभी वह झबरेला कुत्ता भी अपने मालिकों के साथ दिखाई देता है। दूर से विशालकाय एक काला कुत्ता भी आता दिखाई देता है। थोड़ी ही देर में जरमैट जाने वाली गाड़ी आ जाती है। गाड़ियों में न तो कोई ज्यादा मारा-मारी है न ही सीट के लिए कोई लड़ाई-झगड़ा है। लोगों को यहां पेड़ के तनों को खोखला करके उनमें लाल-बैजनी फूल उगाने का बहुत शौक है। यही नहीं, घरों के बाहर लाल बैकग्राउंड पर सफेद क्रॉस बने झंडे दिखाई देते हैं। यह स्विटजरलैंड का अपना झंडा है। एक बात यह भी है कि हमारे यहां की तरह यहां लोग बसों या रेलगाड़ियों में अखबार पढ़ते नहीं दिखते जबकि यहां अखबार मुफ्त में उपलब्ध हैं। यहां अखबार बिकते नहीं हैं। बस स्टाप, स्टेशन आदि पर रखे रहते हैं। आप चाहें तो उन्हें उठाएं, पढ़ें और फेंक दें। वहां अपनी तरह रद्दी बेचने का रिवाज नहीं है। हां, अखबार कागज वाले कूड़ेदान में ही डालना होगा, सड़क पर नहीं। स्विटजरलैंड का सफाई में बड़ा योगदान उसके कूड़े के निपटान का है। यहां कूड़े को तीन भागों में विभाजित करना होता है। रिसाइकिल करके

तरह-तरह की चीजें बनाई जाती हैं। यहां प्लास्टिक का प्रयोग हमारे देश से सौ गुना ज्यादा है मगर एक भी पालीथिन आपको किसी नदी, सड़क, रेलवे स्टेशन या बस स्टाप पर नहीं मिलता।

हम विस्य से जरमैट की तरफ जा रहे हैं। जरमैट पर उतरकर हम रेलवे प्लेटफार्म से बाहर निकलते हैं। बाहर घोड़ागाड़ी दौड़ती दीखती है। यहां सैलानियों को घुमाने के लिए घोड़ागाड़ियों का खूब इस्तेमाल होता है।

मैगजीन्स की एक दुकान दिखाई देती है। वहां फ्रेंच भाषा में छपने वाली एक-से-एक पत्रिका रखी है। लेकिन उनके कवर्स पर या अंदर विज्ञापनों और मैटर में एक भी अश्लील चित्र दिखाई नहीं देता। टी.वी. कार्यक्रम भी काफी साफ-सुथरे हैं। हमारा मीडिया मुनाफे और बिक्री के नाम पर जिस तरह से अश्लीलता की नंगी दौड़ में शामिल हो गया है, उसे स्विटजरलैंड के मीडिया से सीखना चाहिए।

अब जरमैट से हम गोरनेग्राट की तरफ जा रहे हैं। एक तरह से पहाड़ की चढ़ाई रेलगाड़ी में बैठकर।

स्विटजरलैंड एक कृषि प्रधान देश है और अपने डेयरी प्रोडक्ट्स के लिए मशहूर है। यहां की चाकलेट दुनिया-भर में मशहूर है। जिस रेल में हम जा रहे हैं वह 1891 में बनी थी। प्रकृति पर तकनीक की विजय बार-बार दिखती है। इतने बर्फीले पहाड़ों पर रेलगाड़ी में बैठकर जाना एक अनोखा अनुभव है। रेल बर्फ का सीना चीरते हुए मदमस्त हाथी की तरह जा रही है। बर्फीली चोटियां बहुत दूर हैं मगर इतनी पास लगती हैं कि हाथ बढ़ाओ और छू लो। बर्फ पर सूरज की किरणें एक चमक और चकाचौंध भी पैदा कर रही हैं।

जेनेवा दुनिया का दूसरा सबसे महंगा शहर है लेकिन वहां भिखारी, झोंपड़ियां आदि दिखाई नहीं देते। वहां मीग्रोज और कोआप्स डिपार्टमेंटल स्टोर्स की मोनोपाली है। इन्हीं की खेती है, डेयरी फार्म हैं, बगीचे हैं, उद्योग हैं। स्विटजरलैंड में सूरज की रोशनी तो भरपूर है ही, बिजली भी पर्याप्त मात्रा में है। यहां परमाणु बिजली है। यहां न तो कभी बिजली जाती है, न ही पानी शुद्ध करने के लिए किसी उपकरण की जरूरत पड़ती है। यहां का जमीनी पानी बहुत शुद्ध है। जेनेवा लेक में यूरोप का सबसे बड़ा फव्वारा भी लगा है, जो दूर से दिखता है।

गोरनेग्राट पहुंचने से पहले हम चारों तरह-तरह की बातें डिस्कस कर रहे हैं। बार-बार तुलना के रूप में अपना देश याद आता है। सच तो यह है कि विदेश में अपना देश और अधिक याद आता है।

जरमैट से मैटरहोर्न पहाड़ के नाम पर ही बनी रेललाइन से जाने पर आल्पस की पैतालीस चोटियों में से छत्तीस दीखती हैं। रेल लाइन के इर्द-गिर्द बर्फ की सड़क-सी बनी दिखाई देती हैं। चारों तरफ इतनी बर्फ है कि बर्फ का समुद्र-सा लगता है।

नक्षत्र आल्पस की चोटियों के सामने खड़ा होकर कहता है— 'आओ मां, चलें क्या! हो सकता है, सुभाष चंद्र बोस की अस्थियां हमें ही मिल जाएं।' यहां बहुत ठंड है। सब लोग एक-दूसरे के फोटो खींच रहे हैं।

बर्फीली चोटियां आसमान से बातें करने लगती हैं। ठंड से दांत किटकिटा रहे हैं। मगर लगता है, खड़े ही रहें। प्राकृतिक खूबसूरती अपने परिवार के



लैंडमाइन्स के विरोध में बनी तीन पैरों की कुर्सी

में यहां गाय बिकती है। स्विटजरलैंड और जेनेवा में हर कौम और नस्ल के लोग रहते हैं मगर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है।

बसों और गाड़ियां एकदम समय पर चलती हैं। बसों और ट्रेनों के टाइम टेबिल लगे रहते हैं। कौन-सी बस या गाड़ी कितने बजे आएगी, कहां से आएगी, कहां जाएगी, बीच में कौन से स्टेशन आएंगे— सारी जानकारी लिखी रहती है। बसों और गाड़ियों के अंदर लगे स्क्रीन पर सब कुछ आता रहता है और एनाउंसमेंट भी होता रहता है। बूढ़ों, महिलाओं तथा विकलांगों के प्रति लोगों का रवैया बहुत अच्छा है। बस तो क्या, बस स्टैंड पर भी यदि कोई बूढ़ा या महिला दिखाई देती है, सारे लोग खड़े होकर उसे सीट दे देते हैं।

दूसरे पक्षियों के मुकाबले यहां कौए बहुत अधिक हैं। भारतीय कौओं के मुकाबले वे अधिक मोटे-तगड़े और कर्कश आवाज के हैं। पक्षियों को दाना खिलाने का रिवाज भी है। गाय, बकरियों से थोड़ी ही ऊंची हैं। कम्युनिटी फार्मिंग है। जमीन को बेचने-खरीदने के नियम बहुत सख्त हैं। यहां लोगों में फिल्मों के प्रति कोई क्रेज नजर नहीं आता है। यहां तक कि फिल्मों के पोस्टर भी नजर नहीं आते। हां, लोगों को संगीत संध्या करने का बहुत शौक है। इसी तरह थियेटर का भी है। दस-बीस लोग एक जगह इकट्ठे होकर कोई संगीत संध्या आयोजित कर लेते हैं या थियेटर करते हैं। म्यूजिक ग्रुप बसों में चढ़कर भी खूब गाते-बजाते हैं। यहां कारों से फैलते प्रदूषण के खिलाफ एक साइकिल रैली को मैंने निकलते देखा। लोग साइकिलों पर सवार होकर जा रहे थे। लाउडस्पीकर पर नारे लगा रहे थे। उन्हें कारों से फैलते प्रदूषण से आपत्ति थी, जबकि यहां कारें कम दिखाई देती हैं। अमीर से अमीर लोग बसों में चलते हैं। दिल्ली के मुकाबले कारों के मामले में तो यह गांव ही नजर आता है।

संयुक्त राष्ट्र कार्यालय को भी देखने का अवसर मिला। यहां एक बहुत बड़ी कुर्सी लगी है। इसके चार पैरों में से एक टूटा है। यह कुर्सी लैंड माइन्स (बारूदी सुरंग) के विरोध में लगाई गई है। इस पर लिखा है— 'से नो टु क्लस्टर बम।' संयुक्त राष्ट्र के कार्यालय के सामने फव्वारे चलते, बंद होते रहते हैं जो देखने में बहुत आकर्षक लगते हैं।

देश की तरक्की और उसके पोल्यूशन फ्री होने को महसूस किया जा सकता है। □

संपर्क : 17-बी/1, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेस-1, दिल्ली-91

बहुत कुछ बाकी है अभी

अभी हुआ ही कितना वक्त
 सोचने लगूं जल्दी करूं
 फिर टल गया कल पर
 और वह कल जो गया
 नहीं आया आने वाले कल
 न सही अफसोस नहीं
 हुआ जो हुआ
 न रोक सकता था उसे न खुद को
 छोड़ सकता था उस वक्त
 सोचने के लिए कि है ही कितना वक्त
 बाकी जिसे पाने के लिए
 छटपटाऊंगा एक दिन
 सोचा ही कहा था
 अचानक ऐसे ही होना था जिसे
 कहा गया नियत
 मानता हूं नहीं मानता था नियत
 अब भी असमंजस में
 मानने न मानने के दौर में
 सोचता हूं, कह ही डालूं उसे भाषा में
 और अभी जो अर्जित कर पाया भाषा
 नाकाफी है वह कहने में
 जिसे कहने के लिए भीतर से उठते-उठते
 कह ही चुका हूं, कह ही डालूं उसे
 ठहरकर फिर से कोशिश कर
 बिंब जुटाने बैठा तो प्रतीकों ने
 डंडी मार दी
 दहला दिया मिथकों ने
 हटाने पड़े सभी चिह्न
 जिनसे पहचानी जाती जात धर्म पंक्ति
 सब कुछ छोड़
 भाषा के विरुद्ध खड़े हो
 कहता हूं डंके की चोट
 कह ही डालूंगा उसे रंगों में
 न जुटे रंग
 आखिर बुरांश कुछ दिन रहे
 लंबे दिनों अमलतास
 गुलमोहर दिखे-दिखे

छापे रहे भंगीले रंग
 जिस दिन कूची उठाई
 रंग में भंग हुआ
 भाग गया निर्धारित अवधान
 छाया अवसान का गम
 सोचता रहा
 इस बार गीत में कहूंगा
 आखिर एक लंबे अर्से दोस्ती रही
 छंदों से, लय से, तुकों से
 तुकबाज बेतुकों से
 अर्थ के भीतर बहते संगीत से
 ऐन वक्त धोखा हुआ
 अपनी गरज या नासमझी या गरीबी
 माथे पर लिखा था प्रवाद
 बहुत कुछ बाकी है बाहर, भीतर भी
 जमा है सदियों से
 सोचता हूं, कह दूं उसे
 इस बार शोर में, इशारों में
 सब कुछ अंधेरों में बंद है
 यहां तक कि उजाला भी
 जिससे पहचानता, पढ़ता, छूता हूं
 स्वजनों को
 सोचता हूं
 कह नहीं सका गीत में नज्म में
 सूफियाना कलाम में
 अफसोस में भी चुप रहा
 साहस बटोर कहना चाहता हूं सहृदयो
 तो सुन लो सब कुछ
 बहुत हैरतअंगेज, विस्मयकारी
 हिंसक, आक्रामक
 सुन लो उसे मेरे मौन में
 और कह ही रहा हूं जनमते ही
 मौन में
 मौन में पूरा सुन लेना
 मौन ही है जिसे छीन नहीं सकेगा शोर
 न शून्य, न दिशाएं
 सुन लो उसे मौन में
 बहुत कुछ बाकी है जो !

एक भी

नई कॉपल फूटकर
 तकती है हिम शिखर
 नई कथा
 होती है शुरू सन्नाटे में
 सन्नाटे में ही निःशब्द
 हवा संवादरत
 कॉपल थोड़ा-थोड़ा बढ़
 तकती है हिम शिखर
 पहुंचती है यह कथा
 अंतरिक्ष के छोटे-से हिस्से को भेद
 कॉपल भी रचती है अपना
 शिखरवत प्रयाण
 एक भी कॉपल लहलहाए तो
 समूचे वन पर्वत में
 खिलने लगता है नए मौसम का फैलाव
 उत्सव है आज
 हिमालय में उत्सव
 लंबी सदियों के बाद
 ठिठुरन में एक ही छोटी कॉपल
 धीरे-धीरे फैलाती है अपना
 उजाले भरा वर्ण
 उत्सव है हिमालय में
 नए जन्म का निनादित उत्सव !

अनुगूंज

गिरिशृंगों के
 निर्जन एकांत में
 सुना था वह गीत वर्षों पहले
 वह पहले ढलानों
 घाटियों में गूंजा था लौट-लौटकर
 अब वह अचानक
 अपने पार्श्व संगीत के साथ
 गूंजता है अनुगूंज में
 गाया गीत वर्षों पहले
 पूरी कर चुका था अपनी टेक

अनुगूँजों में
वह फिर से दुहर रहा है अजाने

बहुत मंद स्वर में

टूटते हुए

खत्म नहीं होता

अनुगूँज में

शाश्वत

जगाता है भाविक को

अनुगूँज में ही

आता फलांगते सौर मंडल

स्थानीय मिठास में मिलने !

जैसे भी होगा

उस जगह पहुंचना होगा

जैसे भी हो

जहां न कभी मौसम बदलता है

न कभी पेड़, न नदी, न झरने

रुकते हैं न कभी

कुछ चलता है वहीं

पहुंचना होगा नए द्वारों से

में उन्हें ही

तलाशते हुए पुराने द्वारों

और पुराने पथों की ओर

लौट आता हूं तत्क्षण

जगह वह है कहां?

पूछने पर पाता हूं यहीं

यहीं जहां से प्रश्न उगा

वहीं उत्तर का बीज

देखना होगा गहरे में

जैसे भी हो

पहुंचना ही होगा

पहुंचना के लिए

बनाने ही होंगे रास्ते

मर्यादाएं

वे सब वहीं हैं कहीं !

दो कविताएं : रंजना सक्सेना

रिशते

रिशते

पौधे सरीखे

लगातार

खाद पानी डालो

तो फलेंगे

फूलेंगे

रिशते

पौधे

सींचने पड़ते हैं

लगातार

तभी जीवित रहेंगे

घर-आंगन में

रिशते

विनत पौधे

विपरीत परिस्थितियों में भी

जीवित रखते अपना अस्तित्व

समयानुकूल झुक जाते

फिर खड़े हो जाते

आंधी के गुजर जाने के बाद

रिशते

अकड़े

तो खड़े पेड़ सदृश

धराशायी हो जाते हैं

पल-भर में

नहीं बचा पाते

अपना अस्तित्व!

यादें

अतीत की दीवार पर

ठुकी हुई खुटियां

टंगा होता है जहां

कोई चरित्र

जो समय-समय पर

दिमाग पर रंदा मार-मारकर

सदैव तरोताजा रहता है

मन के कोने में

यादें

तैनात वे टुकड़ियां

मस्तिष्क के रंध्रों पर

जो अपनी छिटपुट वारदात से

जीवित रखतीं

अतीत के कृत्य-कुकृत्य

विस्मृति को निस्तेज करती

एक अनवरत प्रक्रिया

यादें

आंखों में बसी

वे श्वेत-श्याम, रंग-विरंगी तस्वीरें

जिन्हें हर व्यक्ति

बारंबार देखना चाहे

कभी न अघाए !

संपर्क : 112, साउथ पार्क अपार्टमेंट्स, कालकाजी,

नई दिल्ली-110007

विकट योद्धा हमारी आजादी का

जितेंद्र धीर

करोड़ों कंठों का
वह एक स्वर
अपने युग की आंधी था
सत्याग्रह की टेक
विकट योद्धा हमारी आजादी का
कर्मयोगी दृढ़वती वह
सत्य का साधक
अहिंसा का पुजारी
साधना तप-त्याग की
जीवंत कृति है
शब्द है केवल नहीं 'गांधी'
समूची संस्कृति है
अन्याय के प्रतिकार की प्रतिश्रुति
विजयिनी आस्था है
स्वाधीनता बंधुत्व समता का उपासक
सर्वधर्म समभाव की
पावन ऋचा है
मुक्तिकामी चेतना का पथ-प्रदर्शक
वह मृत्युंजय
सांप्रदायिकता-हलाहल पी गया
स्वाधीनता-अमृत-कलश
इस देश को दे
राष्ट्रहित में होम
जीवन कर गया
मंत्र जिसका था
करो या मरो
आत्मबल पूरित मनुज
पौरुष पताका
सत्य को कहा ईश्वर
अहिंसा को दी नई परिभाषा
प्रतिस्थापित किया
सबसे कमजोर के
जिंदा रहने का अधिकार
अहिंसात्मक सत्याग्रह के हथियार से
बदल डाला
निर्बल की निर्बलता को
अपरोजय महाशक्ति में
क्रोध को अक्रोध

हिंसा को क्षमा से
तुमने जीता
और बताया इस जगत को
साध्य है उत्तम अगर तो
है जरूरी यह कि
साधन भी सही हो
प्रेरणा के स्रोत
मानव जाति के तुम
निर्बलों के बल
दुखी जन के मसीहा
दलित पीड़ित जन के सच्चे पक्षधर
दीखता नहीं
तुम-सा है दूजा
रंग, जाति, नस्ल की दीवारें तोड़ीं
भेद छूआछूत का तुमने मिटाया
सब बराबर
एक मानव जाति सारी
भाव समता का
मनुज-मन में जगाया
हर बुराई से लड़े
जूझे सदा तुम
स्वावलंबन सादगी की भव्य मूरत
एकता के दूत
पैगंबर अमन के
आज भौतिक रूप में
जीवित नहीं तो क्या
हो विचारों में
सदा जीवित हमारे
विश्व संकट में धिरा है
आज फिर से
देखता तुमको
तुम्हारा पथ निहारे!

संपर्क : क्यू. 283, मुदियाली रोड, गार्डन रीच,
कोलकाता-700024

याचक हूं मैं

नरेश कुमार 'उदास'

सूरज
तुम
देते रहना ताजी धूप
जब तक धरा पर
जीवन बना रहे संभव

चांद
तुम
यों ही देते रहना
शीतल चांदनी
ताकि थके-हारे
ले सकें भरपूर नींद

हवाओ
तुम
बहाती रहना
शुद्ध वायु
ताकि प्राणवान बना रहे
यह जीवन

ऋतुओ
तुम
बदलती रहना
ताकि मौसम का मिजाज
बदलता रहे
और हम समझते रहें
पतझड़ और बसंत का अंतर

मैं तो याचक हूं
करता रहूंगा याचना
कि कालचक्र
यों ही घूमता चलता रहे
सदा
निर्विघ्न, निर्विरोध !

संपर्क : हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान,
पालमपुर-176061 (हि.प्र.)

खंड जल-प्रलय

कहीं सूखा पड़ रहा
कहीं बाढ़ें लीलतीं
सृष्टि को
कौन रोकेगा भला उस
प्रलयकारी वृष्टि को
खंड में होगा प्रलय क्या
नोटिसें यों मिल रहीं
सृष्टि मिट सकती नहीं
अवधारणा क्या पिट रही :

बिंडबना

वृक्ष
जो बिषपान करके
प्राणवायु बांटते
कट रहे
हम देखते
निर्मोहियों के कृत्य
वाह कैसी बिंडबना यह
वही मानव
शंख ध्वनि कर
रोपता है वृक्ष !

इंसान

जब मैं जन्मा था
इंसान का नन्हा बच्चा था
नौकर रामू को
घोड़ा समझ
पीठ पर चढ़
खेलता था
बड़प्पन और लघुपन
नहीं व्यापा था मुझे
छल-कपट से दूर
खालिस इंसान था
जवान हुआ
बना
बड़ी कंपनी का मालिक

घिर गया
चाटुकारों से
तिगुनी उम्र के
चमचों से
तब लगा
इंसान से परे
मैं कुछ और हूं
फरिश्ता
देवता
भगवान
जिसकी वे रट लगाते हैं
सर ... मालिक ... अन्नदाता
दयानिधान
तब गलत को सही
और
सही को गलत
समझ बैठा था मैं
तब इंसानियत
मुझसे दूर
छिटक गई
मुझको भय का
पर्याय माना जाता
तब मैं घर में भी
आतंक था
दुनिया को मूर्ख
खुद को अक्लमंद
समझता था
तब लगा
मैं इंसानों से कटकर
अकेला हो गया हूं
व्याकुल हो मैं खोजने लगा
अपनी असली पहचान
पर नहीं मिला मुझे
अपने में इंसान !

संपर्क : रामकृष्ण समाधि रोड, ब्लाक-एच, फ्लैट-2,
कोलकाता-700054

फूल और मुस्कान

ब्रजभूषण शर्मा

यह छोटा-सा
बहुत कमजोर
किंतु
अनंत स्नेह भरा
हृदय-कमल
मैंने तुम्हें दिया है
संध्या के झुटपुटे में
कोई देख न ले
किसी की नजर न लग जाए
यह खिलता हुआ फूल
खिलने से पहले ही कहीं मुरझा न जाए
उसको ताजा, सुगंधित रखने के लिए
तुम्हारी तरल दृष्टि
एक मुस्कान-भर चाहिए
ताकि वह कभी कहीं
निर्जीव न हो जाए
उस दिन सूरज
बहुत मिठास-भरा था
वह दूसरी सुबह थी
रात के आंसू बह-बहकर
सूख चुके थे
वही तो ओस की बूंद बनकर
उस फूल को धो रहे थे
ओ फूल बहुत मत इतराओ
मत उछलो
नियति है
मुस्कुराना तो पड़ेगा ही
यही है ईश्वरीय वरदान....और ...
सूरज की किरण में
तुम मुस्कुरा रही थीं
मन को सकून था
तुम
एक धीमी-सी आवाज में
प्यार गुनगुना रही थीं !

संपर्क : 14/25 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

संघर्ष

ईवा देव

गुजराती से अनुवाद : शिवचरण मंत्री

रेखांकन : राजेंद्र परदेसी



ईवा देव गुजराती के प्रख्यात कथाकार हैं।

अंततः शिवराम ने शंकुडी को अपने घर में रख ही लिया और यह बात बस्ती के घर-घर में, गली-गली में आग की तरह चारों ओर फैल गई। किशोर, अधेड़ और बूढ़े— सभी घर-घर में, रास्ते चलते और चौराहे पर खड़े होकर इस बात को अफवाह का रंग देने में तल्लीन हो गए। उनकी अपनी दुनिया में यह एक अनोखी घटना थी। तदुपरांत सारा घटनाक्रम शिवराम के इस बस्ती, इस एक छोटे-से शहर में 'नाटकीय सेट' के रूप में जानने वाले के लिए अकल्पित भी नहीं था। बस्ती के सभी व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते थे कि शिवराम किसी भी प्रकार का हल्का, किसी तरह का जोखिम-भरा काम भी कर सकता है। परंतु यह सारी घटना इतनी चुपचाप, चोरी-छिपे घटित हुई कि श्रोता भी स्तब्ध होकर दांतों तले अंगुली दबाने लगता था।

शिवराम के घर के आगे-पीछे मोहल्ले वाले कोई न कोई बहाना बनाकर चक्कर लगाने लगे। उसके घर के सामने के चबूतरे पर बालक-बालिकाओं का जमघट लग गया। उस ओर से गुजरता हर स्त्री-पुरुष बालक मंडली से कुछ पूछताछ करता। सभी लोगों की एकमात्र अभिलाषा थी कि शंकुडी और उसके बच्चों को देखा जाए। क्योंकि शिवराम तो उनके जनजीवन का एक अंग बन चुका था, परंतु शंकुडी एक मस्त मारवाड़िन थी। वह और उसके बालक भी वहां आकर उसके साथ व्यवस्थित हो गए, यह प्रत्यक्ष था। यह बात कुछ और ही थी। जो किंवदंती थी वह प्रत्यक्ष हो गई। अफवाह

वास्तविकता बन चुकी थी और यह अगोचर इंद्रियगम्य बन चुका था। मानो उसने सारे रहस्य की धड़कन को पहचान लिया हो, उसी प्रकार शिवराम सटोरिया ने उसके परिवार को, उसके घर को, आवरणहीन बना दिया। परिणामतः आवासियों का कौतूहल और जोश कई गुना बढ़ गया। विस्तृत रूप से बसे मंडासा के मोहल्ले में प्राण संचरित हो गए। अखूट और अटूट चलती गुफ्तगू में शिवराम के जीवन की आवारागर्दी की चर्चा लोगों में चर्चित होने लगी।

यद्यपि अपनी वंशानुगत परंपराओं और उनमें मूल्यों की अनुपालना के कारण आवासियों में परस्पर टकराहट यदा-कदा ही होती थी। कुछ छोटे-छोटे गुटों के सिवाय बस्ती में दो गुटों का स्पष्ट रूप से वर्चस्व स्पष्ट दिखाई देता था— देवधर के पीपला वाले ब्राह्मण और सांथ के मोदी। वैसे इन दोनों ही गुटों ने शिवराम को अंगीकार कर लिया था। किंतु ब्राह्मण गुट ने शिवराम के परिवार को जाति से बाहर कर रखा था और ब्राह्मणों के इस निर्णय को मोदियों ने समर्थन देकर प्रतिबंध लगा दिया और इस आदेश को उसके परिवार ने स्वीकार कर लिया। इस तरह वर्षों से एक अलिखित आचारसंहिता की मर्यादाओं के अनुकूल उसका जीवन व्यतीत हो रहा था।

एक दिन शाम के समय शिवराम ने जीवन में पहली बार शराब के नशे में धुत्त होकर लड़खड़ाते पांवों से मोहल्ले में प्रवेश किया। नशे में अनर्गल बकवास करते देखकर पहले बच्चों की एक टोली उसके पीछे

चल पड़ी। कुछ ही देर में बहुत बड़ी भीड़ उसके आसपास जमा हो गई। भीड़ में यद्यपि खुसर-फुसर होती रही, पर किसी ने भी उसे टोकने की हिम्मत नहीं की क्योंकि सबके मन में एक बड़ा डर छिपा था कि उसके पास रामपुरी चाकू था। ऐसी एकदम निराधार अफवाहों से वे मन ही मन भयभीत थे। दो-तीन युवकों ने जब उसे टोकने का साहस किया तो उसने उन्हें दो-तीन अभद्र गालियां दीं और अपना रास्ता लेने की कहते हुए नशे में झूमता स्वयं भी आगे बढ़ गया। मामला और अधिक बिगड़ता, इससे पहले ही पीपलावास के मुखिया मूखल मास्टर जी वहां आ पहुंचे। शाला काम निपटाकर वे घर की ओर लौट रहे थे।

“क्यों, क्या हो रहा है? क्या धमाचौकड़ी मचा रखी है?” भीड़ में से अपने निकास का रास्ता ढूंढते हुए उन्होंने पूछा।

पल-भर में सारा माहौल एकदम बदल गया। भीड़ को उग्र बनाने के लिए मात्र उनकी उपस्थिति ही पर्याप्त थी। पर सत्ता की अवज्ञा न करने का स्वर इसमें छिपा था। भीड़ का मिजाज बदला। अपमानित हुए युवकों ने उत्साहित होकर शिकायत की— “देखो, मास्टर काका! शिवराम ने कैसा तूफान मचा रखा है!”

शिवराम की स्थिति देखकर मास्टर काका भी दंग रह गए। सबकी तरह उन्हें भी लगा कि शिवराम ने अवश्य ही युवा, निंदनीय काम किया है और मोहल्ले की आवागमन के नियमों का उल्लंघन किया है, पर मन की गहराई में वह बात भी आग की तरह सुलग रही थी। इस स्थिति में मूर्ख, कुछ कह दे, कुछ कर बैठे, तो....?

कुछ पलों तक वे एक-दूसरे को परस्पर देखते रहे। एक ओर मास्टर काका जहां अपने क्रोध पर नियंत्रण करने को प्रयत्नशील दिखाई दे रहे थे, वहीं शिवराम अपनी स्मरण-शक्ति पर धार लगाने की कोशिश कर रहा था। उसे ज्यों ही यह ख्याल आया कि वे ब्राह्मण जाति के आदरणीय मूखल मास्टर जी हैं, वैसे ही उसने अपने आप को संयमित, सावधान करना शुरू कर दिया।

भीड़ उत्तेजित होने लगी। शोर-शराबा बढ़ने लगा और वातावरण बिगड़ने लगा।

शिवराम के अवचेतन मन में कई तरह की उथल-पुथल मच रही थी। नशे में धुत्त वह नीति-नियमों के बंधनों से तो मुक्त हो ही चुका था।

वह बड़बड़ाने लगा— “ध... मा... चौक... डी कौ...न ... कौन...न मचा... रहा है! मैं...मैं... मे...रे... घर...घर जा रहा हूं। और...और... तुम... सा...सा

...हू... कार मे...रे पीछे पी...छे क्यों पड़े हो? क्या... यह...यह...मेरे घर...घर... का...रस्ता...र... स्ता नहीं है? और मूखल मु...खि...या तु...म तु...म मुझे जाति से बाहर कर सकते हो किंतु... तुम मुझे... मेरे घर... घर... से तो बाहर नहीं निकाल सकते हो?”

यह सुनते ही भीड़ में सन्नाटा छा गया। लगा कि तुषारपात हो गया है। मास्टर काका का मुंह प्लान हो गया है। इस विषम स्थिति से उबरने के लिए रुक्ष स्वर में बोले— “शिवा! भैया! इस समय आप होश में नहीं हैं। चलो, मैं आपको आपके घर छोड़ देता हूं।” उन्होंने सहायतार्थ अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया।

“मैं...मैं... हो...श... होश में नहीं... नहीं? हां...हां...हां। प...र... इससे... इससे...तुम... सबको... क्या... क्या...प्रोब...प्रोब...ल...म... है? मैं... मैं... चुपचाप शांति से अपने घर... घर जा रहा था। रास्ते में... रा...स्ते...तुम... तुम सब बीच में मिले। कौन... किसको...टोकता है... टोकता है... टोकता है...है? मेरे व्यक्तिगत... व्यक्तिगत... मामलों... मा... आ... म...लों... मैं आपको टोका...टोकाटाकी करने का आप लोगों को... कौन-सा...कैसा... अधिकार है?”

ठीक इसी समय शिवराम की नजर मास्टर जी के उसकी ओर बढ़े हाथ पर पड़ी। उसने आगे बढ़े मास्टर काका के हाथ को पकड़कर बोलने का क्रम पुनः शुरू कर दिया— “ऐ...सा हाथ मुझे रोकता है।

य... यह बंद करो...बंद... अपना...अ...प...ना रा...स्ता पकड़ो। आप... आप...भी और का...का... आप...भी अ...प...ना रास्ता ना...पो?” बड़े तिरस्कृत भाव से कहकर उसने मास्टर काका को उंगुली से निर्देश किया और बड़ी लापरवाही से आगे बढ़ गया।

मूखल मास्टर काका का ऐसा घोर अपमान करने का साहस आज तक किसी ने भी नहीं किया था। अतः उनका क्रोध भड़का। संयम का आवरण टूटा। मानो कोई ज्वालामुखी फूटा हो।

“वेश्मी की भी आखिर कोई सीमा होती है! तू लातों का देव...!” मास्टर काका ने एक जोरदार झटके से अपना हाथ उसकी पकड़ से छुड़ाया और एक जोरदार थप्पड़ शिवराम के गाल पर जड़ दिया।

शिवराम चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा। भीड़ ने हर्षनाद किया और मास्टर काका ने तुरंत घर की ओर कदम बढ़ा दिए।

शिवराम ने जिस दिन शंकुड़ी को अपने घर में रखा, उसी दिन शाम को बस्ती के युवा, अघेड़ और बूढ़े मास्टर काका के घर पर दूसरी घटना के बारे में चर्चा करने उनके अध्ययन कक्ष में इकट्ठे हुए।

भीड़ में कुछ समय तक मौन छाया रहा। मास्टर काका ने मौन तोड़ने में पहल नहीं की। संभवतः वे भीड़ के आने का कारण समझकर अब तटस्थ ही रहना चाहते थे।

मास्टर जी के हमउम्र और पहले की घटना के समय उपस्थित रहे एक वृद्ध ने वार्ता सेतु बनाने का प्रयत्न किया— “मास्टर काका, शिवराम की नई करतूत के बारे में आपने भी कुछ तो सुना होगा?”

“हां, सुना तो है, पर कुछ ही स्पष्ट है, अधिक तो अस्पष्ट ही है।”

उनका ऐसा शांत उत्तर सुनकर एक युवक तंश में आकर बोला— “मास्टर काका, एक वेश्मी व्यक्ति जो चाहे सो करे, जैसा चाहे वैसा व्यवहार करे, ललकारता रहे और हम सब चुपचाप मौन बैठे-बैठे यह सब देखते रहें, बर्दाश्त करते रहें!”

“जरा ठहरो भी। उसने किसी को ललकारा है? मैंने आज वर्षों बाद उसके बारे में ऐसी बात सुनी है। नवीन, मेरे छोटे भाई, जरा तू ही बता कि शिवराम ने विगत पांच-छह वर्षों में क्या कारनामे किए हैं?” एक वृद्ध ने प्रश्न किया।

यह सुनकर भीड़ स्तब्ध रह गई। विशेष रूप से वे आवासी जो पहली घटना के प्रत्यक्ष साक्षी थे।

एक दूसरे युवक ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा— “यहां आने से पहले हमने अपने युवा सघ में भी इस बारे में चर्चा की थी। हमने भी आप वाला मुद्दा ही उठाया था। परंतु जब वहां हममें कोई आम राय नहीं हो सकी तो हमने अपने बुजुर्गों से सलाह ली। वहां पर यह निर्णय हुआ कि आप लोगों की सलाह, सूचना के अनुसार इस मसले को निपटाया जाए।”

“मैं आपका आभारी हूँ कि आप मुझे सम्मान देते हैं। पर आप यह सोचकर इस विषय में कोई चर्चा न करें कि मैं समस्या का समाधान कर ही दूंगा। संकुल, सामान्य जन की समस्या पर अत्यंत गहनता से चिंतन होना आवश्यक है। पूर्व वक्ता ने भी इस समस्या पर आम राय न बनने का संकेत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि समस्या जटिल, नाजुक और संवेदनशील है। क्या आप में से कोई मुझे घटना का पूरा विवरण बता सकता है? क्योंकि मेरे ख्याल से अभी भी कई तथ्य अस्पष्ट हैं।”

मास्टर काका का प्रश्न सुनकर सब स्तब्ध रह गए। सब परस्पर एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। कुछ लोग खुसर-फुसर करने लगे। कुछ समय बीता। पर जब कोई प्रश्न का उत्तर देने, पूरा विवरण बताने को तैयार नहीं हुआ तो मास्टर काका रुखे स्वर में

पृष्ठ 41 पर जारी

मस्तानी सरोवर और तीन नदियों के बीच...

मुलाणी बताता है— 'बाजीराव ने अपनी प्रेमिका परम सुंदरी मस्तानी के लिए यह सरोवर बनवाया था। मस्तानी सरपट घोड़ा दौड़ाती हुई यहां आती थी स्नान के लिए और तभी राव भी घोड़े पर सवार पहुंच जाता था। राव मराठा और मस्तानी मुसलमान! मगर अजब और गजब था उनका प्रेम—हर बाधा-बंधन के ऊपर!' मस्तानी सरोवर और तीन नदियों के बीच के प्रदेश—बारामती— की यात्रा का वृत्तांत नरेंद्र मोहन की डायरी से

18 दिसंबर, 2008

दिल्ली से पुणे एयरपोर्ट दोपहर तीन बजे पहुंच गया। यहां से गजानन चव्हाण और बारामती से अर्थशास्त्र के प्राध्यापक डा. मुलाणी लेने आए हुए हैं। उनके साथ बारामती के लिए चल पड़ा। रास्ते में एक जगह चाय के लिए रुके। थोड़ा तरोताजा महसूस किया। यहां गर्मी है और मैं दिल्ली के गर्म कपड़े एक-एक कर उतारता जाता हूं। कार स्पीड में है और हम एक पहाड़ी को काटते हुए आगे बढ़ रहे हैं। दाईं तरफ पहाड़ी है और बाईं तरफ गहरी और फैली हुई घाटी है। मुलाणी घाटी की तरफ इशारा करता हुआ कहता है—“सर, वह देखिए मस्तानी सरोवर!”

मैं चकित-सा उसकी तरफ देखता हूं। चव्हाण कहता है—“सर, अद्भुत है बाजीराव प्रथम और मस्तानी की प्रेम कथा!”

मेरे सामने झिलमिलाने लगता है इतिहास...! मस्तानी (जन्म 1712-13) अनिंद्य सुंदरी थी— मां मुसलमान और पिता बुंदेलखंड के राजपूत राजा छत्रसाल! ऐतिहासिक घटना यों है कि 1728-29 के आसपास जब मुगल सरदार मुहम्मद खां बंगश ने बुंदेलखंड पर हमला किया तब छत्रसाल ने बाजीराव से सहायता मांगी। बाजीराव ने युद्ध में बंगश को पराजित किया और छत्रसाल को गद्दीनशीं कर दिया। तब छत्रसाल ने राज्य के तीन हिस्सों में से एक हिस्सा बाजीराव को सौंप दिया, साथ ही अपनी मुसलमान पत्नी की बेटी मस्तानी भी। मस्तानी एक अच्छी नृत्यांगना और गायिका ही नहीं थीं, अत्यंत कुशल घुड़सवार भी थी। बाजीराव की मां राधाबाई को मस्तानी तनिक न सुहाती और उसके खिलाफ कोई न कोई षडयंत्र रचती रहती थी। बाजीराव ने पूना के राजमहल परिसर में ही मस्तानी के लिए एक अलग महल बनवाया। दोनों का एक बेटा हुआ—शमशेर बहादुर। बाजीराव चाहता था कि उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराकर ब्राह्मण बना दिया जाए मगर ब्राह्मणों के विरोध को देखते हुए उसकी एक न चली। ‘मस्तानी सरोवर’ की बात तो प्रसिद्ध ही है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। दोनों से संबद्ध घटनाएं इतिहास में दर्ज हैं और उनके प्रेम-प्रसंग लोक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं।

मुलाणी झाड़वर से एक ऐसे प्वाइंट पर कार को रुकवाता है जहां से पूरी घाटी नजर आए। मैं देखता हूँ— घाटी के बीचोंबीच बना ‘मस्तानी सरोवर’। मुलाणी बताता है— “बाजीराव ने अपनी प्रेमिका परम सुंदरी मस्तानी के लिए

यह सरोवर बनवाया था। मस्तानी सरपट घोड़ा दौड़ाती हुई यहां आती थी स्नान के लिए और तभी राव भी घोड़े पर सवार पहुंच जाता था। राव मराठा और मस्तानी मुसलमान! मगर अजब और गजब था उनका प्रेम—हर बाधा-बंधन के ऊपर!”

मैं सुनता रहा और महसूस करता रहा जैसे राव और मस्तानी इतिहास के पन्ने से बाहर आकर हमारे साथ चलने लगे हों। पूरे रास्ते में वे मुझे कार के साथ-साथ घोड़ों की सरपट दौड़ाते देखते रहे।

हम बारामती की तरफ तेजी से बढ़ रहे हैं। तभी गजानन चव्हाण ने दाईं तरफ इशारा करते हुए कहा— “देखिए, सामने पहाड़ी पर खंडोबा मंदिर!”

मैं देखता हूँ वह भव्य मंदिर और मुझे याद आ जाती है कई मराठी कवियों की कविताएं, जहां बड़े अर्थपूर्ण अभिप्रायों से जुड़कर खंडोबा, कभी संदर्भ रूप में, तो कभी प्रतीक रूप में आया है। मराठी मानस को खंडोबा आज भी उद्धेलित करता है।

पुणे से शारदा नगर, बारामती पहुंचने में लगभग तीन घंटे लग गए हैं। शाम गहराने लगी है। यहीं के एक कालेज (शारदा बाई पवार महिला महाविद्यालय) में ‘हिंदी का वर्तमान परिदृश्य : स्थिति एवं गति’ विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन रखा गया है। मेरे साथ ही रुके हैं डा. गजानन चव्हाण। एक लंबे अरसे से उन्हें जानता हूँ, मगर पहचानना अभी शुरू किया है।

अनुपमा प्रभुने और मराठी विभाग की डा. कुलकर्णी मिलने आ गई हैं। वह तुकाराम और मेरे नाटक *अभंग गाथा* पर बातें करती रहीं। मैं भी उन्हें दस साल पहले के पुणे और देहू के अपने अनुभव बताता रहा। तभी एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट ट्रस्ट के अध्यक्ष आ गए। अच्छी हिंदी जानते हैं, खुलकर बातें करते रहे।

बारामती यानी भीमा, कराह और नीरा नदियों के बीच का प्रदेश। इसका पुराना नाम भीमथड़ी है। मुगल काल से लेकर ब्रिटिश काल तक इसका नाम भीमथड़ी ही रहा। तब बारामती एक गांव-भर था। मगर जिस तेजी से इसका विकास हुआ, उससे पूरे प्रदेश का ही कायापलट हो गया? इसे देखते हुए पूरे प्रदेश को भीमथड़ी के बजाय बारामती कहा जाने लगा। यह क्षेत्र 1952 से 1974 तक की अवधि में अकालग्रस्त रहा। भूमि बंजर हो गई। तब एक भयावह प्रश्न उठा कि खेती कैसे हो और पीने का पानी कैसे उपलब्ध हो? इस प्रश्न से निबटने के लिए जल सिंचाई की कई योजनाएं बनाई गईं। एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट ट्रस्ट की स्थापना की गई। पीने के पानी की समस्या को हल करने के लिए 300 पाइप तालाबों की निर्मिति हुई। इससे खेती और पानी को लेकर इस क्षेत्र में व्यापक जन-जागृति का प्रसार हुआ है।

डा. नरेंद्र मोहन जाने-माने लेखक हैं।

19 दिसंबर 2008 :

आज सुबह मुलाणी और एस.वी. महामुनि के साथ कृषि विज्ञान केंद्र देखने के लिए चला गया। कृषि के क्षेत्र में हो रहे नए-नए प्रयोग देखे। यहां पौधों, पेड़ों और खेती पर ग्लोबल वार्मिंग के परिणामों और उसके प्रभावों को लेकर परीक्षण होते रहते हैं। जलवायु में तेजी से हो रहे परिवर्तन चक्रों के यथार्थ को समझने की दृष्टि से इन परीक्षणों का बड़ा महत्त्व है। यथार्थ और सपने के बीच की खाली जगह को भरने की कोशिश के साथ हमारा भविष्य जुड़ा है। हम आगे बढ़ते हैं—ग्रीन हाउस! एक ही जखेला फूल की अलग-अलग किस्में—विंटरक्वीन, रोसालिन, इनाएलन और सहाना। जलवायु को आवश्यकतानुसार नियंत्रित रखने और कीड़ों से बचाने के लिए ऊपर से नीचे तक जाल है। हर पौधा तीन, साढ़े तीन साल तक फूल देता है। फव्वारा सिंचन पद्धति से सिंचाई। ड्रिप सिंचाई भी। आगे चलते हैं तो अंजीर, पेरू और चीकू की भरमार। मुख्य तौर पर गन्ने की पैदावार। रेशम प्रक्रिया केंद्र के साथ नीग नदी से निकली नहर। रेशम के कीड़ों के कोशों से कैसे रेशम बनता है— इसकी बहुस्तरीय महीन प्रक्रिया में देखता रह गया।...

शरद पवार के बड़े भाई दिनकर उर्फ अप्पा साहेब गोविंद पवार की समाधि गेस्ट हाउस के करीब ही है। मैं उस समाधि के सामने खड़ा हूँ। महामुनि बताता है कि अप्पा साहेब खेती और शिक्षा के विकास के प्रति संकल्पवान थे। प्रदेश की लड़कियों में शिक्षा के प्रचार के लिए अप्पा साहेब ने इस कालेज की नींव रखी और खेती के विकास के लिए एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट ट्रस्ट की स्थापना की थी। कालेज से उन्हें इतना लगाव था कि वे चाहते थे कि उनकी अंत्येष्टि कालेज प्रांगण में ही हो और उनका कोई पुतला न बनाया जाए। मरणोपरान्त उनकी राख कालेज के पेड़-पौधों में डाल दी जाए और ठीक वैसा ही किया गया।

उद्घाटन सत्र! मेरे साथ हैं एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट ट्रस्ट की ट्रस्टी सौ. सुनंदा पवार, प्राचार्य देवीकर, डा. रमेश देवरे और गजानन चव्हाण। 'हिंदी का वर्तमान परिदृश्य : स्थिति और गति' विषय से संबंधित राष्ट्रीय संगोष्ठी का इलेक्ट्रॉनिक बटन दबाकर उद्घाटन करता हूँ— रवींद्रनाथ ठाकुर की इन पंक्तियों के साथ : 'आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है जिसका एक-एक दल एक-एक प्रांतीय भाषा और उसका साहित्य, संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सभी प्रांतीय बोलियां, जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहें...और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।'

महाकवि ने हिंदी और भारतीय भाषाओं का, वर्षों पहले एक स्वप्न देखा था, जिसे हम शब्दों में कहते जरूर हैं लेकिन चरितार्थ नहीं कर पाए हैं। अनुपमा प्रभुने की पुस्तक *भूले-बिसरे चित्र का सांस्कृतिक-सामाजिक अध्ययन* के लोकार्पण के बाद बीज भाषण देते हुए मैंने कहा कि हिंदी के वर्तमान परिदृश्य को देश के वर्तमान परिदृश्य से—आतंकवाद और विस्थापन, किसानों की समस्याओं से—अलग-थलग करके नहीं देखा जा सकता। आज हम जिस खंडित और विभाजित स्थिति से गुजर रहे हैं, वह एक बड़े संकट की घड़ी है जिसका सीधे-सीधे सामना करने की जरूरत है।

मैंने 1980 के बाद की उत्तर आधुनिक स्थिति की तरफ संकेत करते हुए कहा कि 80 के आसपास टेक्नोलाजी, मीडिया और विश्वव्यापी अर्थतंत्र ने संबंधों और आचरणों के नए समीकरण उपस्थित कर दिए हैं जिससे विचार और विचारधाराएं असंगत और अप्रासंगिक हो गई हैं। मनोरंजन के पारिवारिक

साधनों के बजाय प्रौद्योगिकी के नए उपकरण—टेलीविजन, कंप्यूटर, मोबाइल और इनके साथ जुड़ी सैकड़ों और चीजें कुछ तरह से हमारे जिंदगी में दाखिल हो गई हैं कि हमें यह नहीं सूझ रहा कि हम क्या करें, किधर जाएं? उपभोक्तावाद और बाजारवाद ने हर चीज को बिकाऊ वस्तु में बदल दिया है। कबीर की लाठी टूटी पड़ी है और प्रेम के घर को कुछ लोग इस तरह से तोड़-फोड़ रहे हैं जैसे उनकी खाला का घर हो। यह बड़ी दारुण स्थिति है। फटकारकर सच कहने वाला कोई नहीं दिख रहा, न वैसा साहस। सूचना का विस्फोट है मगर सूचना को ज्ञान में बदलने की कोई राह नहीं दिख रही। मुख्य प्रश्न यही है कि सूचना को ज्ञान और संवेदना में कैसे बदलें? हाशिए पर ढकेले जा रहे शब्द को कैसे धामें? कैसे बचाएं उस शब्द को, जिसके बिना मनुष्य और संस्कृति की कल्पना असंभव है।

20 दिसंबर 2008

आज सुबह खंडवा से श्रीराम परिहार और पुणे से दमोदर खड्से आए हैं। दोनों से पहली बार मुलाकात। दामोदर खड्से ने कई अच्छी कहानियां लिखी हैं और कविताएं भी। उन्होंने अपना नया कविता संग्रह दिया है—*तन्नाटे में रोशनी*। कई कविताएं पढ़ गया हूँ। 'कविता' की अंतिम पंक्तियां हैं—*कविता एक जिद्दी लड़की की तरह/मुझे बार-बार/वफादार जिंदगी के लिए/उकसाती है/और मेरे थके पांव/फिर धीरे-धीरे उठने लगते हैं/कविता के पीछे-पीछे...* श्रीराम परिहार यों तो गीतकार हैं, मगर साहित्यिक दृष्टि से बड़े जागरूक हैं। उन्हें बखूबी खबर रहती है कि कहां क्या हो रहा है।

यहां की कवयित्रियों ने एक कविता-संग्रह दिया है—*रंगधन*। यह एक तरह का मराठी कविता सप्ताक है जिसमें सात कवयित्रियां—सुनीता कुलकर्णी, ज्योति जोशी, सविता पिंगले, सुनीता अहिरराव, लता महाजन और आश्वत्थामा मंगी शामिल हैं। अलग-अलग भावभूमियों और मानसिकता वाली ये कविताएं स्वाभाविकता में आकर्षक हैं।

शाम को मराठी की प्राध्यापिका जोशी और अंग्रेजी की मैडम ढवलीकर मुझे कालेज परिसर दिखाने ले गईं। दोनों में साहित्यिक अभिरुचि है। जोशी मराठी की कवयित्री हैं। ढवलीकर बातें करने में चुस्त हैं। मैं उन्हें 'पोस्ट इटैलीजेंट गर्ल आफ केरल' कहता हूँ तो वह खास अंदाज में हंसती हैं। एक जगह मांडा बनाया जा रहा है। दो चूल्हों पर तेज आंच के ऊपर मिट्टी के उभरे हुए गोलाकार पके-तपे त्यों पर बड़ी-बड़ी रोटियां सेकी जा रही हैं। शर्कराशेपित गुंथे आटे को हाथों से एक बड़ा आकार (सामान्य रोटि से चार गुना) दिया जाता और उसे सुर्ख त्यों पर डाल दिया जाता। जैसे ही वह फूलकर कुप्पा हो जाता, उसे उतार लिया जाता। आज हल्की-हल्की मिठास वाले इसी मांडा का स्वाद चखा गया।

शारदा नगर से बारामती शहर आया हूँ। साथ में हैं डा. मुलाणी और मराठी की डा. जोशी और अंग्रेजी की डा. ढवलीकर। हम कराह नदी के तट पर बने काशी विश्वेश्वर मंदिर में प्रवेश करते हैं। सदियों पुराना शिव मंदिर—निहायत सादा, साधारण। कहते हैं, इस मंदिर में बैठकर ही शिवधर ने अपना काव्य पूरा किया था।

हम कविवर मोरोपंत के निवास स्थान पर पहुंच गए हैं। मोरोपंत (1729-1794) शिवाजी के तुरंत बाद के एक बड़े कवि जिन्होंने आर्य छंद में *पंडित* काव्य की रचना की। खुरदरे पत्थरों का बना हुआ साधारण-सा घर है। तीन कमरे हैं जिन पर ताले जड़े हैं। कोई नजर नहीं आ रहा। हम घर के पीछे

पृष्ठ 35 पर जारी

पांच लघुकथाएं

कालीचरण प्रेमी

अस्तित्व

खूबसूरत ड्राइंगरूम के अंदर सजे कागज के फूलों के गुलदस्ते का लटका हुआ चेहरा देखकर बाहर खुले लान में खड़े गुलाब के पौधे ने चिंतित होकर पूछा— “क्यों भाई, इतने महफूज और सुंदर सलाने ड्राइंगरूम में होते हुए भी तुम्हें भला किस बात का कष्ट हो सकता है? तुम तो बड़े मजे में हो!”

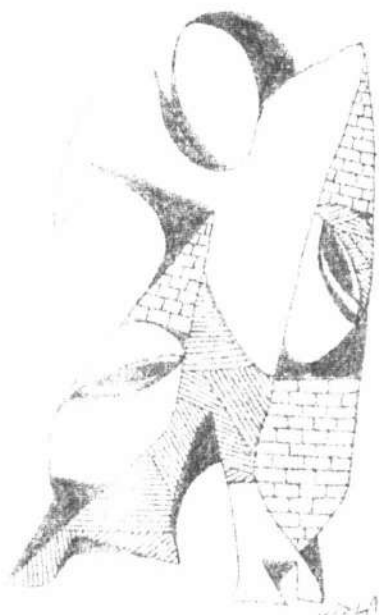
इतना सुनते ही कागज का गुलदस्ता रो पड़ा और सिसकते हुए बोला— “भैया, तुम क्या समझोगे मेरी पीड़ा को! मैं गुलामी का प्रतीक हूँ। तमाम सुख-सुविधाएं भोगते हुए भी यहां घुटन महसूस करता हूँ। मेरा कोई भविष्य नहीं है। गंदा और मटमला होने पर मुझे बाहर फेंक दिया जाएगा। एक तुम हो, कितने खुश हो! धूप, बरसात और सर्दी सहकर भी बड़े आनंद से रहते हो। मौसम की मार झेलकर भी तुम खुशबू बिखेरते रहते हो। तुम खुली हवा में सांस लेते हो। बूढ़े हो जाने पर माली तुम्हारी कलमें बनाकर नए पौधे रोप देगा। इस तरह तुम्हारा अस्तित्व कभी खत्म होने वाला नहीं है। तुम्हारी आजादी देखकर मेरी पीड़ा और बढ़ जाती है।”

गुलाब यह सुनकर प्रचंड गर्मी में भी दर्प से खिल उठा।

आतंक

आज पूर्णिमा है। अंगूरी हर पूर्णिमा के दिन व्रत रखती है। व्रत के दिन वह गांव के बाहर नुक्कड़ वाले देवता की पूजा करती और बच्चों में बताशों का प्रसाद बांटती। कुटी वाले साधु ने बताया था कि ऐसा करने से उसके सब दुख-दुल्लिख दूर हो जाएंगे।

दोपहर दो बजे चिलचिलाती धूप में वह छोटे ननकू को लेकर देवता के मढ़े में पहुंची। उसने धी का दिया जलाया। अगरबत्ती सुलगाई। आलेनुमा देवता



रेखांकन :
राजेंद्र परदेसी

के चारों ओर कलेवा लपेटा। फिर होठों में कुछ बुदबुदाते हुए उसने ताजे जल का लोटा देवता के ऊपर धार बांधकर डाल दिया। ननकू की आंखों में कौतूहल था। वह खड़ा हुआ होठ बिचका रहा था। तभी ननकू को न जाने क्या शरारत सूझी, वह लपककर देवता के ऊपर कुर्सी की मानिंद बैठ गया। अंगूरी आगबबूला हो उठी— “वेशरम... देवता के ऊपर से उठ जा.. कुछ तो डर देवता से... बेहया!”

ननकू नहीं उठा। उल्टा चिढ़ाने लगा। अंगूरी आपे से बाहर हो गई— “नासपिटे! भला उठ जा इसके ऊपर से.. ठाकुर ने देख लिया तो फजीता कर देगा...!”

ठाकुर का नाम सुनते ही ननकू में दहशत भर उठी। उसे अपने पिता की पिटाई याद हो आई। वह तुरंत खड़ा हो गया और नीचे कूद गया।

विकल्प

“आपका नौकर नहीं दिख रहा शर्मा जी?”

“पिछले हफ्ते उसका हिसाब कर दिया।”

“क्यों भला?”

“वह बड़ा नाकारा और कामचोर हो गया था।”

“लेकिन शर्मा जी, अब बिना उसके... दिक्कतें बहुत बढ़ गई होंगी?”

“नहीं, कोई खास नहीं।”

“फिर भी घर का इतना सारा काम-धाम?”

“परसों ही मां को गांव से बुलवा लिया है।”

बलि

हरीश के पिता रामप्रसाद डाक विभाग में क्लर्क थे। रामप्रसाद के रिटायरमेंट में अभी दो महीने शेष थे कि उनके साथ एक दुर्घटना घट गई। गर्मी के दिन थे। रामप्रसाद शाम के धुंधलके में अपनी छत पर टहल रहे थे। अचानक मुंडेर पर उनका पैर फिसल गया। वे धड़ाम से नीचे आंगन के पक्के फर्श पर आ गिरे। वे गंभीर रूप से घायल हो गए। हरीश ने तत्काल उन्हें प्राइवेट नर्सिंग होम में भर्ती करा दिया। उपचार आरंभ हो गया। डाक्टरों ने उनको आई.सी. यू. में रखा। कृत्रिम सांस देने के लिए आक्सीजन लगा दी।

रामप्रसाद के ठीक होने के आसार जल्दी नजर नहीं आ रहे थे। डाक्टरों ने स्पष्ट बता दिया कि महीनों लग सकते हैं। उधर रिटायरमेंट की तिथि नजदीक आने लगी थी। इसी के साथ ही हरीश की चिंताएं बढ़ने लगीं। वह सोचने लगा, इस तरह तो लाखों खर्च हो जाएंगे। पिताजी के रिटायरमेंट के बाद जो पैसा ग्रेच्युटी और फंड आदि का पैसा मिलेगा, वह भी इलाज के लिए कम पड़ जाएगा। उसके बाद इन बेकारी के दिनों में कहां से वह पिताजी का इलाज कराएगा! उसके पिताजी की पूरी जिंदगी नौकरी करने का क्या फायदा होगा! उल्टे वह घाटे में चला जाएगा। फर्ज कीजिए, खुदा न खास्ता अगर पिताजी बीमारी के कारण रिटायरमेंट से पहले ही गुजर जाते हैं तो उसे कई तरह से लाभ हो सकता है। ग्रेच्युटी और प्रोविडेंट फंड के अतिरिक्त बीमे का भुगतान भी उसे मिल जाएगा। वह गत कई वर्षों से बेरोजगारी से त्रस्त है। पिताजी की मृत्यु के बाद अनुकंपा के आधार पर उसे पिताजी की जगह नौकरी मिल जाएगी। पेंशन अलग से मिलती रहेगी। उसके सारे दलिददूर दूर हो सकते हैं। उसका दिमाग रात-दिन इसी उधेड़बुन में लगा रहता। रात को उसे ठीक से नींद नहीं आती थी। आंख बंद होते ही तरह-तरह के ऊटपटांग ख्याल आने लगते थे।

31 अक्टूबर को उसके पिताजी का रिटायरमेंट था। परंतु उनकी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा था। 30 अक्टूबर की रात को जाने किसने आक्सीजन की सप्लाई बंद कर दी, जिससे अगले दिन तड़के रामप्रसाद का देहांत हो गया। हरीश दहाड़े मारकर रोने लगा, किंतु भीतर ही भीतर वह आत्मतृप्ति के भाव से स्वयं को बहुत सुरक्षित महसूस कर रहा था।

बचाव

डाक विभाग में जनसंपर्क अधिकारी के पद पर तैनात होने के कारण मेरे पास फाइलों का अंबार लगा रहना सामान्य-सी बात थी। तीन-चार मृत्यु दावा पत्रों के सत्यापन के लिए नगर पालिका के दफ्तर जाने का मैंने मन बना लिया था। किंतु सुबह ही सुपरिटेण्डेंट साहब का फोन आ गया। उन्होंने कहा कि डाकघर सूर्यनगर में चोरी हो गई है, वहां जाकर तफ्तीश करें और शाम तक उनके कार्यालय को रिपोर्ट दें।

पूर्व निर्धारित सारे कार्यक्रम स्थगित करके मैं सूर्यनगर के डाकघर पहुंचा। पोस्टमास्टर सहित सारा स्टाफ बाहर खड़ा था। अन्य तमाशबीन लोग भी खड़े थे। मैंने सारे डाकघर का बारीकी से निरीक्षण किया। पिछली खिड़की के सरिए काटकर चोर अंदर दाखिल हुए थे। चोरों ने अलमारी, आयरन चेस्ट, स्टॉप बाक्स, मेज की दराज आदि के सभी ताले तोड़ डाले थे। डाकघर का सारा रिकार्ड अमन-व्यमन कर दिया था।

“पोस्टमास्टर साहब, कोई पैसा-वैसा तो नहीं गया!” मैंने पूछा।

“वेस तो कोई बड़ा नुकसान नहीं हुआ है!” पोस्टमास्टर साहब घटना का ब्यारा देने हुए बोले— “क्योंकि हम यहां कैश रखते नहीं हैं। पर मेरी मेज की दराज में रखे सरकारी कैश के एक हजार रुपये चले गए। वे गलती से यहां छूट गए थे।”

मैंने कागज और कार्बन पेपर लगाया तथा घटना की तफ्तीश ब्यौरेवार लिखने लगा। जब मैं एक हजार रुपये की राजस्व की हानि दर्शाने लगा तो पोस्टमास्टर साहब मुझे बीच में ही रोकते हुए बोले— “सर, आप रिपोर्ट में कोई नुकसान न दर्शाएं। एक हजार रुपये में अपनी जेब से डालकर सरकारी नुकसान पूरा कर देंगे।”

“आप क्यों यह दंड भुगत रहे हैं?” मैंने जिज्ञासावश पूछा।

“आप मेरी बात ध्यान से सुनिए, सर!” पोस्टमास्टर साहब मुझे समझाते हुए बोले— “राजस्व की हानि दर्शाते ही सुपरिटेण्डेंट साहब सुरक्षा में खामी बताकर मेरे खिलाफ चार्जशीट जारी कर देंगे। फिर चार्जशीट के लिए जांच कमेटी बनेगी। कई अधिकारी बार-बार तारीखों पर मुझे बुलाएंगे। कई वर्ष जांच चलेगी। हर बार अधिकारियों की आवभगत के लिए मुझे औपचारिकताएं पूरी करनी होंगी। उनके लिए चाय-पानी के अतिरिक्त कोल्ड ड्रिंक, समोसे, बर्फी, डोना, ग्लमलाई, गुलाबजामुन वगैरह की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसी चक्कर में मेरे हजारों रुपये स्वाहा हो जाएंगे। इसके बाद भी पीछा छूटना मुश्किल है। जांच आधी-रंगे फिर भी मेरे खिलाफ ही जांच रिपोर्ट देंगे। उसके बाद मुझे विभागीय दंड मिलेगा। इस सारी जहमत से बचने के लिए इस समय अपनी जेब से एक हजार रुपये दंड भर देना अधिक आसान है।”

मेरी सभ्य में पोस्टमास्टर साहब की सारी बातें आ गई थीं। ऐसा करके वे न केवल स्वयं को बचा रहे थे बल्कि जांच कमेटी के नाम पर सरकार को हजारों रुपये का नुना लगाने से भी उन्होंने बचा लिया था। □

संपर्क : ए-106, वाग कालोनी, शास्त्री नगर, गाजियाबाद -201000

मस्तानी सरोवर और तीन नदियों के बीच

पृष्ठ 34 से आगे

की तरफ जाते हैं कि शायद वहां कोई हो। वहां एक व्यक्ति मिल जाता है जो यहां की देखरेख करता है। वह हमें मोरोपंत के लेखन कक्ष में ले जाता है। कवि का कक्ष— मैं चारों तरफ नज़र दौड़ता हूं। कमरे के बाईं तरफ मोरोपंत की फ्रेम में जड़ी बड़ी-सी तस्वीर है। बिना कपाटों वाली अलमारी में कई किताबें एक-दूसरे पर पड़ी हैं। वह व्यक्ति हमें मोरोपंत की पुस्तकें दिखाने लगता है। उनकी हस्तलिखित प्रति देखता हूं— अक्षरों की बनावट— क्या सुंदर सुलेख है! कवि को याद करता हुआ कवि के कक्ष से बाहर आता हूं। पत्थरों पर पांव रखता बाहर की तरफ जाता हुआ सोचता हूं— तब इस घर की कितनी प्रतिष्ठा रही होगी! कितनी शान-शौकत! जिन पत्थरों पर पांव रखते हुए मोरोपंत सदियों पहले घर के अंदर-बाहर आते-जाते रहे होंगे, उन्हीं पर पांव रखता हुआ मैं उस घर से बाहर आ गया हूं।

21 दिसंबर 2008

कल रात नौ बजे गजानन चव्हाण के साथ पुणे आ गया हूं। उनके घर पर चंद्रकांत बादिबडेकर, अशोक कामथ और आसावरी काकड़े से फोन पर बातचीत करता हूं। 11 बजे आनंद प्रकाश दीक्षित आ गए। 15-20 साल पहले डा. रामदरश मिश्र के घर पर मिले थे— खुले स्वभाव और चमकीली आंखों वाले। पुणे जब भी जाना हुआ, उनसे भेंट हुई। नामदेव अध्यासन पुणे में जब *अभंग गाथा* का वाचन रखा गया था, तब भी वे आए थे और चर्चा में भाग लिया था। दो साल पहले शिरूर में उनसे मुलाकात हुई थी और आज उन्हें देखा तो लगा, वे एकदम से ढल गए हैं। वे जैसे शीशे में खुद को उतार रहे थे। मेरठ, पिलानी, लखनऊ से गोरखपुर होते हुए वे कैसे पुणे पहुंचे— वे बताते रहे। वे आत्मस्वीकृति के मूढ़ में थे— “बड़ी कोफ्त होती है जब लोग मुझे ‘रस सिद्धांती’ कहकर चलता कर देते हैं। आप तो जानते हैं, मैंने आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लिखा है। शुरू-शुरू में मैंने कविताएं और कहानियां लिखीं।”

वे अफसोस के साथ कहने लगे— “मैं क्यों आलोचना के चक्कर में पड़ गया, खासतौर पर पुस्तक समीक्षाओं के झमेले में! किस काम आई वे समीक्षाएं? कितना अच्छा होता अगर मैं कविताएं, कहानियां लिखता रहता। और कहाँ आ पड़ा— पुणे में? दिल्ली में होता तो बात और होती। अब तो कोई नहीं पूछता—न कोई लेखक न प्रकाशक!”

गजानन चव्हाण की लिखी, संपादित किताबें देखने लगता हूं। उन्होंने मराठी कवि विठ्ठल बाघ के कविता-संग्रह का अनुवाद किया है *वृषभ सूक्त* नाम से। मैं संग्रह की कविताएं एक सिटिंग में पढ़ जाता हूं। अलग ढंग की कविताएं हैं। वृषभ को केंद्रित करके लिखी गई ऐसी कविताएं हिंदी में नहीं हैं। कृषि जीवन और संस्कृति को लिए और जाने बिना न ऐसी कविताएं लिखी जा सकती हैं और न उनका अनुवाद किया जा सकता है। विठ्ठल बाघ और गजानन चव्हाण यहां एक हो गए हैं, एक वेवलेंथ पर आ गए हैं। जो बैल नई रचना का बीज है और सर्जना का मूल, हमारे वर्तमान में उसी की जगह पर सांड आ बैठा है— *खटने वाले बैल सब/ सीमा पर भगा दिए/ गांव में अब सिर्फ/ मत्त सांड फैल गए... बौने वालों के पेट खाली/ मुफ्तखोर चटोर हुए, गांव में अब सिर्फ/ बेशर्मा सांड घूम रहे... देख रहे टकटकी लगाकर। लोग सब डरे हुए/ गांव में अब सिर्फ/ बेताल सांड नाच रहे।* □

संपर्क : 239-डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

राम-विषयक साहित्य से समृद्ध भारतीय चित्रकला

रामचरित एवं रामकथा—दोनों ही भारतीय जनों के लिए सदैव प्रेरणादायक तत्त्व रहे हैं जिससे कला भी प्रभावित हुई। रामचरित एवं चित्रकला में मध्य एक अटूट संबंध है। यह संबंध युगों से भारतीय कला-संस्कृति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान संजोया है। भारतीय चित्रकला में रामचरित पर प्रकाश डाल रही हैं अर्चना रानी



अयोध्याकांड, रामायण, मेवाड़ शैली (1850)

रामायण एवं **रामचरितमानस** भारतीय संस्कृति के सर्वाधिक लोकप्रिय दस्तावेज हैं। इनमें भारतीय लौकिक, अलौकिक तथा पारलौकिक तीनों चक्रों वाला इतिहास रूपी रथ मानो अपनी पूरी यात्रा संपन्न कर लेता है। इसमें मिथकवृत्त, इतिहासवृत्त तथा समाजवृत्त—तीनों ही वृत्त भक्ति की धुरी पर घूम रहे हैं। दोनों ग्रंथ एक ऐसा सरोवर हैं जिनके संपर्क से विषय-वासनाएं समाप्त हो जाती हैं तथा पाठक अथवा दर्शक आनंद की अनुभूति करता है। इन महाग्रंथों को विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में गिना जाता है। इनकी एक बड़ी सार्थकता यह है कि इनमें निहित रामकथा जन-जन की कथा है। वह लगभग हर युग में हमें नवीन साक्षात्कार के लिए आमंत्रित करती है। इसके पात्र राम को अहसास भी है कि उन्हें अपना सामाजिक दायित्व पूरा करना है। यह उनके चरित्र का मानवीकरण है। राम अपने कर्मशाली जीवन में अनेक संघर्षशील व्यक्तित्व के उतार-चढ़ावों से गुजरते हैं। तरुणाई में उन्हें विश्वामित्र मांगकर ले गए, राक्षसों से सीधी टकराहट, इधर राज्याभिषेक की तैयारी और उधर वनवास की घोषणा—इस प्रकार वाल्मीकि एवं तुलसी ने राम में नरत्व अर्थात् साधारण मानव रूप का संदेश दिया है; ऐसा नर, जो जय-पराजय, लाभ-हानि में भी स्थिरप्रज्ञ था।

चित्रकला के संबंध में रामकथा चित्रण पर दृष्टिपात किया जाए तो यह पता चलता है कि भारतीय चित्रकला एक बहुआयामी कला है। आरंभ से ही भारतीय चित्रकला का अन्य ललित कलाओं के साथ अंतःसंबंध रहा है।

जहां सिंधु घाटी की सभ्यता के प्राप्त अवशेषों में वह भांडों तथा मिट्टी के बर्तनों की सज्जा हेतु सहायक कला के रूप में उभरी है वहीं अजंता के भित्तिचित्रों में उंगलियों की अगणित मुद्राओं, मनुष्य शरीर की भाव-भंगिमाओं, अद्भुत असंख्य केशपाश, पुरुष-स्त्रियों के अगणित हाव-भाव तथा उन सबमें व्याप्त करुणा एवं संवेदना में उसने बौद्ध जातक कथाओं को चाक्षुष बनाया है। भारतीय चित्रकला के इस बहुआयामी स्वरूप में जो आयाम सर्वाधिक विस्तृत एवं व्यापक है वह है—चित्रकला और साहित्य के अटूट संबंध का आयाम। भारतीय धार्मिक, सांप्रदायिक एवं ललित साहित्य का चित्रकला पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। जयसिंह नीरज के शब्दों में—‘भारतीय चित्रकला की विशेषता यह रही है कि उसने काव्यगत शब्दचित्रों को साकार कर दिया है।’ एम.एस. रंधावा ने भी भारतीय चित्रकला पर साहित्य के व्यापक प्रभाव को स्वीकार किया है। साहित्य और चित्रकला के इस अंतःसंबंध के कारण ही भारतीय चित्रकला में कथा तत्त्व (थीमेटिक एलीमेंट) का प्राधान्य है। चित्रकला में कथा तत्त्व की व्याप्ति का सर्वप्रथम एवं सशक्त प्रमाण है—अजंता के भित्तिचित्र। तदुपरांत यह विशेषता जैन लघुचित्रों से होती हुई मुगल, राजस्थानी और पहाड़ी लघु चित्रकला में प्रचलित हुई। चित्रकला की ये तीनों शैलियां तत्कालीन साहित्य से प्रभावित रहीं।

मध्यकालीन लघु चित्रकला में राम विषयक चित्रों का अंकन व्यापक स्तर पर हुआ है। ज्यूटा जैन न्यूवर ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है। लघु चित्रण में यदि हम इस परंपरा को मुगल शैली के अंतर्गत देखें तो पाते हैं कि धर्म निरपेक्ष शासक अकबर ने **रामायण** का फारसी में अनुवाद कराया। इनके काल में **हम्जानामा**, **रामायण**, **महाभारत**, **हरिवंश पुराण** का फारसी में अनुवाद हुआ।



अयोध्या कांड, कांगड़ा शैली



राम, लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ, कल्लू शैली (1710)

इनके समय की फारसी रामायण में अनुवाद के साथ-साथ चित्रों का अंकन भी उच्चतम उदाहरण है। यह सचित्र फारसी रामायण की पांडुलिपि 'फ्रियर गैलरी' वाशिंगटन में संग्रहीत है। इसकी एक प्रति जयपुर के पोथीखाने में भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त मुगल कला में राम दरबार, दशरथ दरबार, राम-सीता वार्तालाप, राम स्वयंवर, राम-रावण युद्ध, राक्षसों को मारते हुए, राम जैसे विषयों पर भी चित्र देखने को मिलते हैं। वस्तुतः अकबर ने पोथी चित्रों के बनवाने में विशेष रुचि दिखाई। इनके समय की एक राम-विषयक पोथी जयपुर के महाराज के संग्रह में हैं।

मुगल शैली के उपरांत राजस्थानी चित्रकला में तो धार्मिक विषयों का बहुलता से अंकन हुआ। राजाश्रय और लोकप्रियता के कारण यह कला देश के



शूर्पणखा की नाक काटते लक्ष्मण, राजा रवि वर्मा, तैल चित्र



राम-हनुमान, विष्णुपुर, पं. बंगाल

विशाल भू-भाग में प्रचलित हो गई। इसके प्रमुख कला-केंद्र मालवा, मेवाड़, जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, कोटा, बूंदी, मारवाड़ आदि प्रमुख रहे। आरंभिक राजस्थानी कला में मालवा शैली का बड़ा महत्त्व रहा है। इस शैली में रामायण के लगभग एक सौ बारह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस शैली का एक प्रसिद्ध चित्र है जिसमें राम-लक्ष्मण स्वर्ण मृग का पीछा कर रहे हैं। कलात्मक दृष्टि से राम विषयक चित्र मालवा लघुचित्रों में अत्यंत ही परिष्कृत एवं रमणीय हैं। संयोजन में संतुलन, आकृतियों में मुद्राओं का सही प्रतिपादन, रंगों का चटक प्रयोग तथा गति एवं भाव की निर्मिति शैली के चित्रों के प्राण हैं।

राजस्थानी के मेवाड़ केंद्र पर राम विषयक चित्रों की अनेक प्रतियां प्राप्त हैं। 1699 ने वहां राम विषयक चित्र बने जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहीत हैं। यहां 1651 में चित्रित रावण-जटायु युद्ध विशिष्ट दर्शनीय है तथा इसके साथ ही ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन में भी सुंदर चित्र संग्रहीत हैं जो रामायण के अयोध्याकांड पर आधारित हैं। वस्तुतः यहां के चित्रों में लोक रंग की झलक, शौर्य तथा भावानुभूति का सुंदर सामंजस्य है। इसी प्रकार अलवर, बीकानेर तथा किशनगढ़ में भी अपनी-अपनी निजी विशेषताओं के साथ राम विषयक कथावस्तु चित्रित होती रही। वस्तुतः रामचरित एवं उनकी यशोगाथा इतनी उदात्त, संघर्षमयी तथा लोक जीवन का जीता-जागता उदाहरण है कि उसके माध्यम से भारतीय संस्कृति का स्वरूप एक जगह पर ही उपलब्ध हो जाता है। रामकथा भारतीय आदर्श जीवन का जीता-जागता प्रतिबिंब है। सांस्कृतिक इतिहास और जन जीवन का जितना बेजोड़ समन्वय राम की यशोगाथा में मिलता है, उतना अन्यत्र किसी में नहीं। शील, शक्ति और सौंदर्य की त्रिवेणी राम के चरित्र की अनुपम विशेषता है। इसलिए राम भारत के ही नहीं, वरन भारतोत्तर सांस्कृतिक यात्रा के प्रतीक हो गए हैं। अतः राजस्थानी कला में रामकथा के साथ-साथ आने वाली अंतर्कथाएं, यथा—श्रवण कुमार, केवट एवं शबरी, राम-वनवास, भरत-मिलाप, लंकाकांड सभी से संबंधित चित्र प्राप्त होते हैं।

राजस्थानी कला के उपरांत पहाड़ी कला अपनी कोमलता, अभिव्यंजनात्मकता तथा संगीतमय अभिव्यक्ति के लिए कला-जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कला में राम विषयक चित्रों का जितना अंकन हुआ, उतना

पृष्ठ 40 पर जारी

रामकथा की चित्रांकन-परंपरा : आर्ष रामायण

रामकथा की चित्रांकन-परंपरा को मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश ने अविच्छिन्न रखा। यह राजवंश स्वयं को सूर्यवंशी राम का वंशज स्वीकारता है। पूर्वपुरुष के चरितगान-स्वरूप रामायण कथा की प्रतिलिपि कराकर चित्रांकित भी कराई गई। मेवाड़ के मनस्वी राणा जगत सिंह (प्रथम) ने 1941 में स्वपठनार्थ वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि करवाई, जिसे आर्ष रामायण की संज्ञा दी गई। बता रहे हैं शिवशंकर त्रिपाठी

रामकथा भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला का जीवन है। भारतीय जनमानस की आस्था, उसके विश्वास का सत्य, जीवन का शिवत्व एवं सामासिक चिंतन का चिरंतन सुंदरम् उसी में नित रूप धरता रहता है। इस रूप का सावयव साक्षात्कार किया महर्षि वाल्मीकि ने और उस साक्षात्कार का व्याख्यान है आदि रामायण। यही रामायण भारतीय चिंतन धारा का स्रोत है। उसी स्रोत की अमृत-बूंदों से सिक्त, भारतीय भाषा कवियों की वाणी ने रामकथा के विविध व्याख्यान प्रस्तुत किए। कलाकारों ने भी अपनी कल्पना और तूलिका द्वारा रामकथा को चित्रों में रूपायित किया।

रामकथा की चित्रांकन-परंपरा का श्रेय मुगल सम्राट अकबर को है। अकबर धर्म सहिष्णु, साहित्य-मर्मज्ञ शासक था। भारतीय धर्म चेतना से साक्षात्कार करने के लिए उसने महाभारत एवं रामायण जैसे महान ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया था। एतदर्थ अकबर ने प्रचुर धनराशि व्यय करके उसकी हस्तलिखित प्रति को उस समय के कुशल कलाकारों द्वारा चित्रित भी कराया। दुर्भाग्यवश यह महत्त्वपूर्ण प्रति फ्रियर आर्ट गैलरी, वाशिंगटन की निधि है। कुछ वर्ष पूर्व उसकी माइक्रोफिल्म, भारतीय मनीषासूत्रम्, दारागंज, इलाहाबाद के सूत्र-संयोजक ने मंगवाकर संरक्षित रखी है। अकबर के इस कला प्रेम ने कालांतर में अन्य भारतीय शासकों को भी अनुप्रेरित किया।

रामकथा की चित्रांकन-परंपरा को मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश ने अविच्छिन्न रखा। यह राजवंश स्वयं को सूर्यवंशी राम का वंशज स्वीकारता है। पूर्वपुरुष के चरितगान-स्वरूप रामायण कथा की प्रतिलिपि कराकर चित्रांकित

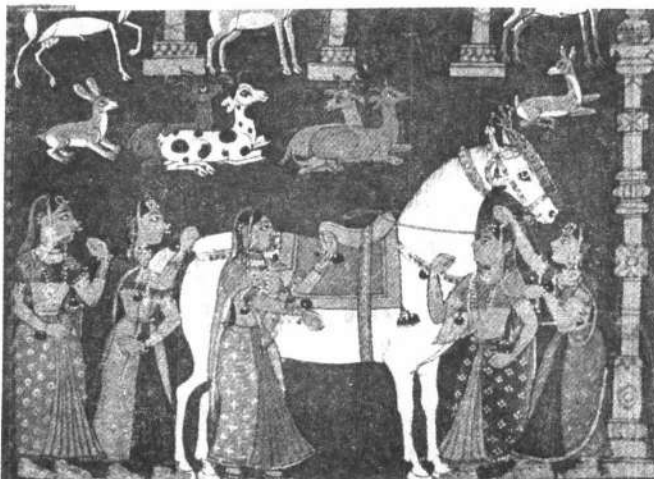
भी कराई गई। मेवाड़ के मनस्वी राणा जगतसिंह (प्रथम) साहित्य के साथ-साथ स्थापत्य और चित्रकला में भी विशेष रुचि रखते थे। उन्होंने सन 1941 में स्वपठनार्थ वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि करवाई, जिसे आर्ष रामायण की संज्ञा दी गई। इस प्रति का लेखन महात्मा हीरानंद जी ने और चित्रांकन मनोहर एवं साहिबदीन ने किया था। संपूर्ण प्रति में लगभग चार सौ स्वर्णिम चित्र हैं। महात्मा हीरानंद जी जैन परंपरा के वाहक रहे। राजा जगत सिंह के शासनकाल में आर्ष रामायण का चित्रांकन पूर्ण न हो सका। संभवतः मात्र बालकांड ही चित्रांकित करवाया गया था। इसका चित्रांकन चित्रकार मनोहर ने किया। शेष चित्रांकन राणा जगतसिंह के पुत्र राणा राजसिंह के राज्यकाल में कराया गया। प्रति के सभी पृष्ठों के किनारे पर चारों ओर लाल-पीले रंग की रेखाएं हैं।

आर्ष रामायण की इस प्रति के प्रत्येक कांड पृथक-पृथक आकार-प्रकार का है और प्रत्येक की पत्र संख्या भी पृथक है। बालकांड में कुल 7 पत्र हैं, आकार 31 23 सें.मी. हैं। पृष्ठ के एक ओर कथा तथा दूसरी ओर कथा-प्रसंग के अनुकूल चित्रांकन है। अयोध्याकांड में 12 पत्र, आकार 38 29 सें.मी.। इनमें 68 पत्रों पर स्वर्णिम चित्रांकन है। अरण्यकांड में 72 पत्र और आकार 39 23 सें.मी. है। किष्किंधाकांड में 98 पत्र हैं। आकार वही 39 23 सें.मी.। सुंदरकांड में 191 पत्र और आकार है 39 29 सें.मी.। लंकाकांड में 39 29 सें.मी. के 206 पत्र हैं। उत्तरकांड में कुल 114 पत्र हैं, आकार 39 23 सें.मी.। आर्ष रामायण की इस प्रति के कुल 721 पृष्ठ हैं। यह महत्त्वपूर्ण चित्रांकित प्रति समग्रतः किसी एक स्थान पर सुरक्षित नहीं हो सकी। बालकांड प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुंबई और ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन में, अयोध्याकांड वेल्स संग्रहालय, मुंबई में सुरक्षित है। अरण्यकांड की प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में, लंकाकांड एवं उत्तरकांड ब्रिटिश म्यूजियम और किष्किंधाकांड की प्रतियां कैसल म्यूजियम लंदन में है।

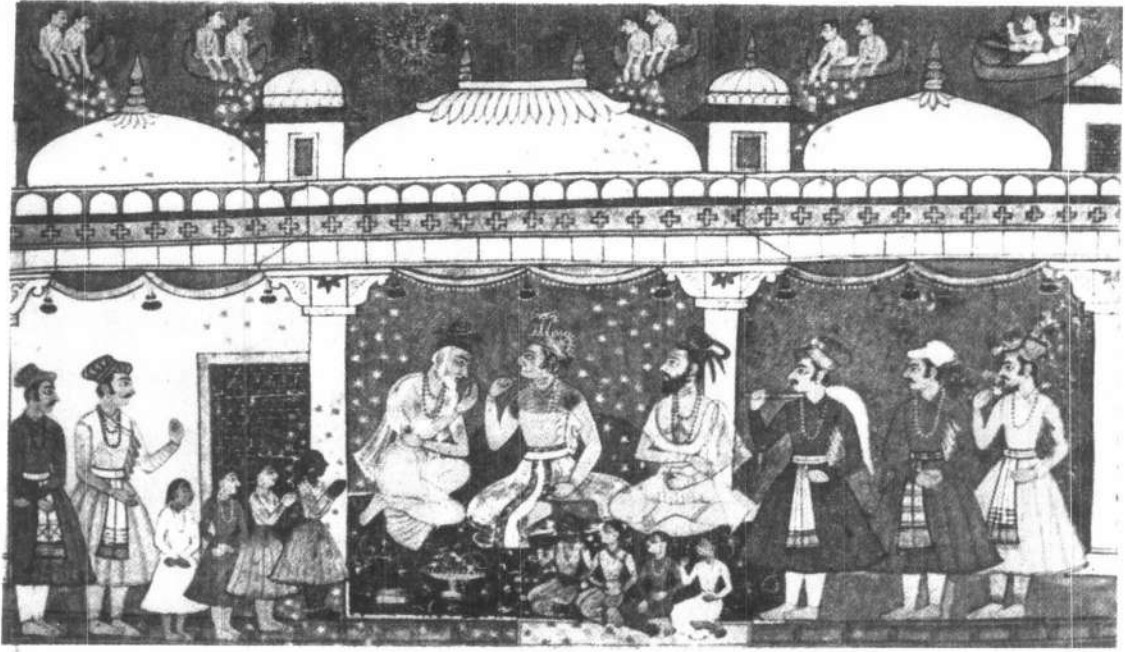
संपूर्ण प्रति चित्रांकित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है, कि कलाकार कथा-प्रसंगों में अतिविशिष्ट अंशों को ही चित्रों में रूपायित करने के लिए निर्दिष्ट किया गया था अथवा उसने स्वयं ऐसे स्थलों का चयन किया हो। यही कारण है कि अयोध्याकांड में 68, अरण्यकांड में 36, किष्किंधाकांड में 34, सुंदरकांड में प्रत्येक पृष्ठ पर एक-एक चित्र, लंकाकांड में 88 एवं उत्तरकांड में 82 चित्रांकन हैं। इस प्रकार बालकांड के चित्रों को मिलाकर कुल लगभग पांच सौ आकर्षक चित्रांकन हैं।

इस प्रति के समस्त चित्रांकन सत्तरहवीं शती में प्रतिष्ठित मेवाड़ शैली

शिवशंकर त्रिपाठी सुपरिचित लेखक हैं।



अश्वमेध का अश्व



दशरथ और विश्वामित्र का वार्तालाप

के हैं। चित्रांकन प्रधानतः दो चित्रकारों मनोहर और साहिबदीन ने किया है। इतना विशाल कार्य निश्चित ही दो चित्रकारों की सामर्थ्य से परे है। कारण यह संपूर्ण कार्य मात्र चार वर्षों अर्थात् 1681-1684 ई. संपन्न हुआ। इन दोनों कलाकारों के निर्देशन में कतिपय अन्य कुशल चित्रकारों ने भी चित्रांकन कार्य किया होगा। दुर्भाग्य से उनके नामों का उल्लेख नहीं मिलता। सर्वाधिक स्पष्ट उल्लेख केवल चित्रकार मनोहर का हुआ— 'हत्वार्षे रामायण महर्षि वाल्मीकि विरचिते दशरथ प्रमोदो नाम बालकांड समाप्तमिति। संवत् 1906 समये मार्गशीर्ष मासे कृष्ण पक्षे त्रयोदश्यातिथौ गुरुवासरे मेदपाट देशे श्री उदयपुर नगरे महाराजाधिराज श्री श्री 45 जगतसीध जी विजहंराजे चित्तारो मनोहर आचार्य श्री जसवंत लिखायो महात्मा हीरानंद पुस्तक लिखती।' संकेत यह कि बालकांड का चित्र-संपुट चित्रकार मनोहर ने बनाया।

सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ लाल-पीले रंग के रेखांकन द्वारा आवृत (चारों ओर बार्डर) है। इसी कलात्मक स्वर्णिम रेखांकित सीमा के मध्य मूलकथा और तद्प्रसंगानुकूल चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है। यत्र-तत्र दो कथा प्रसंग साथ ही चित्रित हो गए तो पृथक् करने के लिए लाल रंग की एक रेखा खचित है। दोनों प्रसंगों के चित्र इस प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं। मनोहर के चित्र संपुट विशुद्ध राजस्थान-मेवाड़ शैली के हैं, पृष्ठभूमिगत भावाभिव्यक्तिगत, रंग-संयोजनगत, स्त्री-पुरुष की आकृति निर्मितगत सभी पक्ष समान स्तरीय हैं। साहिबदीन के चित्र-संपुटों पर यत्र-तत्र दक्कन शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। किष्किंधाकांड के चित्र संपुट इस तथ्य को पुष्ट करते हैं। यह भी माना जाता है कि सभी चित्र-संपुट मनोहर और साहिबदीन के नहीं हैं वरन उन दोनों की ही शैली का अनुसरण करके अन्य अनाम चित्रकारों द्वारा तैयार किए गए हैं। इन चित्रकारों के नामोल्लेख कहीं इस प्रति में नहीं मिलते। ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में सुरिक्षत प्रति में एक स्थान पर साहिबदीन का नामोल्लेख अवश्य है।

आर्ष रामायण बालकांड का चित्रांकन राणा जगतसिंह के राज्यकाल की ही अवधि सन 1641 में चित्रकार मनोहर ने किया था। इस कारण दृश्यांकन में

राजसी वैभव का प्रतिबिंबन सहजतः दृष्टिगोचर होता है। साथ ही राजस्थानी वेशभूषा रीति-परंपरा के अनुकूल प्रदर्शित की गई है। चित्रकार मनोहर को राजकुमार राम की बाल्यावस्था के चित्र, वनगमन दृश्य, राजसभा-वैभव, विवाह के दृश्य, प्रीतिभोज, तपोवन के दृश्यांकन में राजस्थानी चित्रशैली से प्रस्तुत करने का स्वर्णिम अवसर सहज ही प्राप्त हो गया। यह चित्रांकन प्रकारांतर से सत्रहवीं सदी के मध्ययुगीन सामाजिक जीवन का गौरवपूर्ण प्रतिबिंबन प्रस्तुत करता है। *आर्ष रामायण* की इस चित्रांकित प्रति के अवलोकन और चित्रों के रंग-संयोजन एवं आकृतियों की वेशभूषा, साज-सज्जा से तत्कालीन सामाजिक-संस्कृति का आभास प्राप्त होता है।

बालकांड के चित्रांकन में मनोहर ने मेवाड़ शैली को सावयव आत्मसात करने का प्रयास किया है और अपने दाक्षिण्य से उस शैली को एक पृथक् प्रतिष्ठा दिलाई है। इन चित्रों में राजस्थान-मेवाड़ शैली का पूरा प्रतिबिंब मिलता है। इस शैली की दो विशिष्टताएँ हैं— 1. रंगों का चमकीलापन, और 2. सहज रेखांकन-प्रक्रिया ये दोनों मनोहर के चित्रों में परिलक्षित हैं। चित्रांकन में विषय विविधता है— प्रकृति के मनोरम रूप, वनराजि, वृक्ष, पर्वत श्रेणी, मुनि आश्रम आदि। बालकांड की प्रति में— राजसभा में सभासदों, संगीतकारों के साथ नृप दशरथ का वार्तालाप, गणिकाओं द्वारा ऋषि शृंगी को प्रलोभन, ऋषि शृंगी का आगमन, मूसलाधार वर्षा, ऋषि शृंगी और शांति का विवाह, ऋषि शृंगी के विवाहोपलक्ष्य में राजभोज, नृप दशरथ द्वारा राजसभासदों से अश्वमेध यज्ञ विषयक विचार-विमर्श, अन्य पशुओं के संग अवशमेध अश्व, यज्ञाग्नि से अमृत कलश लिए अग्निदेव का प्रकट होना, दशरथ का विश्वामित्र से विचार-विमर्श, कामाश्रम में राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्र मिथिला के पथ पर, धनुष-भंग, राम-विवाह की शोभायात्रा, राम-परशुराम का मिलन, विवाहोपरांत राम तथा उनके भाइयों की माताओं से भेंट एवं ब्राह्मणों और विद्वानों को उपहार-भेंट।

चित्रांकन में कथा-प्रसंग सार्थ प्रतिबिंब परिलक्षित होते हैं। कथापात्र की मुद्रा पर और क्रिया-कलापों में प्रसंगगत घटनाएं भावाभिव्यक्ति होती दृष्टिगोचर

हैं। पुरुषाकृतियों में राजस्थान की पारंपरिक वेशभूषा का अंकन है। राम-लक्ष्मण राजपूत क्षत्रिय की भांति ही वीर-वेश में चित्रांकित हैं— हाथ में अन्य शस्त्रास्त्रों के साथ कृपाण भी है। सामान्यतः चित्रांकन में नृप, राजसेवक, सामंत, देवगण, अप्सराएं, सैनिक, ऋषि आदि सभी रूपायित हैं। पुरुषाकृतियों सर्वत्र एकरूप में चित्रित हैं— पतली मूर्छें, पार्श्व में गलमुच्छ एवं विस्तृत वक्ष। ये चित्र तत्कालीन समाज के प्रत्येक स्तरीय जन का आभास कराते हैं। नारी अंकन में लंबी नासिका और बड़ी-बड़ी मूर्छें, दीर्घ मुखमंडल एवं रंगीन घाघरा, चोली तथा ओढ़नी से विभूषित। पुरुषाकृतियों में भी प्रायः नासिका तथा बड़ी आंखों का महत्त्व दिखाई पड़ता है। आश्रम का चित्रांकन करने में उसके अनुषंगी परिवेश, परिवेश का आभास दिलाने वाले प्रकृति-उपादान, नीरवता, स्निग्ध-शांति-आभासक उपकरणों को चित्रित करने की कल्पना को रूप प्रदान किया गया है। कामाश्रम की पर्णशाला में विश्वामित्र-संग राम-लक्ष्मण वाले चित्र में ताड़ और ताल वृक्षों की छटा, पर्णशाला, पर्वतीय प्रदेश, प्रस्तर-खंड का वृक्ष, पुष्पित पादप की शाखाओं पर दीपशिखा रूप सुमन, पार्श्वीकृत सुभग सरोवर, सरोवर में निर्भय और निर्द्वंद्व विचरणशील जलविहग, मछलियां, वहीं एक ओर स्नान करते तपस्वीजन। तपस्वियों के शरीर पर लटदार केश। मुखाकृति सामान्य— वही लंबी नासिका आदि। राम को श्याम वर्ण और लक्ष्मण को गौरवर्ण चित्रित किया गया है। राम-विवाह की शोभायात्रा में संपूर्ण राजसी वैभव दृश्यांकित है। रथ, हाथी, घोड़े, पदाति, ध्वज—सब कुछ चित्रित है। मिथिला के पथ पर गमन करते ऋषि विश्वामित्र तथा राम-लक्ष्मण

वाले दृश्यांकन में, राजनगरोचित पृष्ठभूमि अत्यंत सहजता से प्रदर्शित है।

कलाकार की कल्पना कथा-प्रसंग को आत्मसात करने में सतत यत्नशील परिलक्षित होती है। स्थलीय दृश्यांकन अनुपम है। ऐसे चित्रांकनों में प्रत्येक स्थल पर लहराती घासें, पीले, हल्के बैंगनी रंग, चमकीले मिट्टी के ढेर चित्रित हैं। अंकुरित वनस्पति के व्याज से पर्वतीय दृश्य को चित्रांकित किया गया है। पुष्पित लता, गुल्म, वृक्षों को विविध रंगों के माध्यम से दर्शाया गया है।

चित्रफलक तीन भागों में विभाजित है— मध्य में मुख्य घटना का चित्रांकन, ऊपर, नीचे उसके अनुषंगी वृक्ष। कथा-प्रसंग का मुख्य पात्र प्रत्येक चित्रांकन में प्रायः तीन बार अंकित हैं, यत्र-तत्र तीन से भी अधिक स्थिति प्राप्त होती है। कारण उसका वैशिष्ट्य-प्रदर्शन प्रतीत होता है। जलस्थल को प्रदर्शित करने के लिए भूरे फलक पर तिरछी रेखाओं का प्रयोग और रात्रि के दृश्य का अंकन गहरे नीले अथवा काले रंग मेघाच्छन्न आकाश में चंद्रमा का प्रकाश और उस प्रकाश को दर्शाने के लिए सर्पवत रेखांकन का प्रयोग किया गया है।

यह चित्रांकन मेवाड़ शैली के इतिहास में विशिष्ट स्थान का भागी है क्योंकि चित्रांकन में आर्ष सहजता, आकृतियों की प्रतीकात्मक मुद्राएं— जहां निश्छलता, ओज बिखेरता दृष्टिगोचर होता है। □

संपर्क : दारागंज, इलाहाबाद

राम-विषयक साहित्य से समृद्ध ...

पृष्ठ 40 से आगे

अन्य किसी कला में नहीं हुआ। यहां कला में प्रमुख केंद्र कांगड़ा, बसौली, गढ़वाल, कुल्लू, मंडी, जम्मू, नूरपूर हैं। सौंदर्य की दृष्टि से कांगड़ा कुल्लू (चित्र तथा चंबा के चित्र महत्त्वपूर्ण हैं। वहां बने चित्रों को निरखकर हम कह सकते हैं कि पहाड़ी कला में मार्मिक, कारुणिक, रसात्त्वक एवं भावुक प्रसंगों को प्रथम स्थान दिया गया है। चित्रों को निरखने से स्पष्ट है कि रामकथा को प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने की प्रवृत्ति पहाड़ी चित्रकारों की रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लघु चित्रकला में राम विषयक चित्रों का अंकन व्यापक स्तर पर हुआ है तथा विभिन्न शैलियों में अंकित चित्रों के अध्ययन से हमें विविध भाव, रस, घटना एवं दृश्य देखने को मिलते हैं।

आधुनिक युग के चित्रकारों में राजा रविवर्मा ने राम विषयक भारतीय विषयवस्तु को तैल चित्रों के रूप में उतारा। बंगाल में अपने-अपने ढंग से लोकशैली में राम विषयक चित्र बने। गुप्त काल में राम विषयक अनेक प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गईं। वस्तुतः ऐसी कोई ललित कला नहीं बची है जो राम विषय से प्रेरित न हो। साहित्य, संगीत, रामलीलाएं, नाटक, कलैंडर, स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला सभी के माध्यम से राम के चरित्र का यशोगान कला में किया जाता रहा है तथा आगे भी होता रहेगा। भारतीय चित्रकला की तो सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उसने महाकाव्यों, लोक कथाओं और इतर साहित्य के विषयों को अपने चित्रण का आधार बनाया है। भारत में काव्य और चित्रकला के

संबंध तथा पारस्परिक सहयोग का एक पुराना इतिहास रहा है। जातक कथाओं, जैन ग्रंथों, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, भागवत, आर्य रामायण, गीतगोविंद, रामचरितमानस आदि ग्रंथों को आधार बनाकर बहुलता से चित्रण होता रहा है। यह चित्रण दो प्रकार का है— एक, संपूर्ण और दूसरा, ईशत् अर्थात् बहुत-से ग्रंथों के संपूर्ण पदों को आधार बनाकर चित्र बने हैं और बहुत-से ग्रंथों का सुलेखन करते समय स्थान-स्थान पर मार्मिक प्रसंगों को लेकर चित्रण किया जाता रहा है।

राजस्थान के राजघरानों के महलों में शेखावटी की हवेलियों में, महत्त्वपूर्ण मंदिरों में जहां राम का गुणगान चित्रों के माध्यम से हुआ है, वहीं श्मशान घाट की छतरियों में भी गोलाकार गुंबद में राजतिलक, राम-रावण युद्ध, धनुर्धर, सीताहरण आदि के महत्त्वपूर्ण पैनल प्रदर्शित हैं। इसी प्रकार अठारहवीं शती के प्रारंभ से तो कृष्णचरित और रामचरित का चित्रांकन करने की परंपरा ही चल पड़ी, जिससे भारतीय चित्रकला का महत्त्व और तुलसीदास का आदर्श भली प्रकार प्रस्तुत हुआ। इस प्रकार रामकथा के मार्मिक प्रसंगों को आधार बनाकर भारत की अनेक चित्रशैलियों में समय-समय पर चित्रण होता रहा है। पोथी चित्रण, लघु चित्रण, भित्ति चित्रण, पट चित्रण तथा अन्य माध्यमों में राम की यशोगाथा का चित्रण हमारी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर है। रामचरित एवं रामकथा—दोनों ही भारतीय जनो के लिए सदैव प्रेरणादायक तत्व रहे हैं जिससे कला भी प्रभावित हुई। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि रामचरित एवं चित्रकला में मध्य एक अटूट संबंध है। यह संबंध युगों से भारतीय कला-संस्कृति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान संजोए है।

संपर्क : 25, मुरारीपुरम, गढ़ बस स्टैंड के सामने, मेरठ-250002

जीवन भर का दुख

पृष्ठ 22 से आगे

जल्दी-जल्दी दरवाजे की ओर बढ़ने लगे। दरअसल वे भीड़ का हिस्सा बनकर स्टेशन से बाहर निकलना चाहते थे, ताकि टिकट कलेक्टर की नजरों से बचना आसान हो जाए। अक्सर उन्होंने देखा है, भीड़ का रेला जब बाहर निकलता है तो इने-गिने लोगों से ही टिकट कलेक्टर रू-ब-रू हो पाता है। अधिकांश यात्री यों ही निकल जाते हैं।

रेले में शामिल होने के इरादे से मि. पंवार ट्रेन से नीचे उतरे ही थे कि सामने दामाद को स्वागत में खड़े देखा। दामाद ने आगे बढ़कर आधुनिक शैली में (अपना दायां हाथ उनके पैरों से छह सेंटीमीटर की दूरी पर रोककर) उनके पांव छुए। उन्होंने उसे गले लगाया और तुरंत आगे चल पड़े। वे जितनी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहे थे, दामाद उतने ही आराम से, भीड़ से बचता हुआ चल रहा था। मजबूरन उन्हें अपनी रफ्तार कुछ कम करनी पड़ी। आगे बढ़ जाने वाले जन-समूह की ओर उन्होंने हसरत-भरी नजरों से देखा, जो संकट की इस घड़ी में उन्हें अकेला छोड़े

जा रहा था। दामाद की बातों का संक्षिप्त-सा उत्तर देते हुए वे आगे बढ़ते रहे। उसने उनकी चुप्पी के विभिन्न अर्थ लगाए और आगे कोई बात नहीं की।

मेन गेट अब ज्यादा दूर नहीं था। एकाएक मि. पंवार का मौन टूट गया। वे मुखर हो गए। बेटी-दामाद के हालचाल पूछने का सिलसिला आगे बढ़ा और बढ़ता ही चला गया। बातों के दायरे में न जाने कितने विषय आने लगे। ऐसा लग रहा था जैसे वे इसी वक्त दामाद से दुनिया-भर की बातें करना चाहते हैं। उनकी बातों के दौरान मेन गेट आ गया। वहां एक नहीं, दो-दो टिकट कलेक्टर झूटी दे रही थे। लेकिन अपनी बातों में मग्न मि. पंवार ने उस ओर देखा तक नहीं। जी डी पी (सकल घरेलू उत्पाद) और देश की आर्थिक स्थिति जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए वे गेट से बाहर निकलकर कब कार-पार्किंग तक पहुंच गए, इसका उन्हें स्वयं भी पता नहीं चला।

दामाद की टोपटा कोरोला में आराम से पांव पसार बैठे मि. पंवार मन ही मन आज की यात्रा का पोस्टमार्टम कर रहे थे। सारी चीर-फाड़ के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आज जो कुछ हुआ, उसके लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं। उनकी नीयत शुरू

से ही ठीक थी। ट्रेन में कितनी उद्विग्नता से टिकट चैकर की प्रतीक्षा करते रहे और बिना टिकट यात्रा करने पर उन्हें कितनी ग्लानि हो रही थी, इसे उनकी अंतरात्मा ही जानती है। सही नीयत के बावजूद यदि उन्हें बिना टिकट यात्रा करनी पड़ी तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। सारा दोष उस गैर-जिम्मेदार टी.टी.ई. का है जिसने झूटी में इतनी लापरवाही बरती। देखा जाए तो एक तरह से पूरी रेलवे व्यवस्था दोषी है।

मि. पंवार को बिना टिकट यात्रा करने का जरा भी दुख नहीं है। टैकनीक अपनाकर बिना टिकट स्टेशन से बाहर आ जाने का भी कोई दुख नहीं है। लेकिन उन्हें एक बात का बहुत दुख है, वह यह कि टिकट न होने पर भी उन्होंने रेलवे के चाय-स्नेक्स और डिनर स्वीकार किए। इस तरह मुफ्त खाना खाकर उन्होंने रेलवे को घाटा पहुंचाया। टिकट न होने पर उन्हें चाय-डिनर लेने का कोई अधिकार नहीं था।

मि. पंवार को इस बात का सचमुच दुख है और वह दुख-जीवन भर रहेगा। □

संपर्क : 20, सदर अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

संघर्ष

पृष्ठ 31 से आगे

बोले— “मुझे यह सब दंतकथा-सा लगता है। मेरे युवा बंधुओं, कृपया मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर दें कि हम किसके बारे में यहां चर्चा कर रहे हैं?”

घटनाक्रम से जो चौंके थे तथा वे जो शिवराम की चरित्रहीनता से परिचित थे, उन लोगों ने अपना पक्ष रखते हुए कहा— “सामान्यतः यह सभी जानते हैं कि शिवराम सटोरिया है, जुआरी है और वह गुंडों के साथ घूमता रहता है, परंतु हमारे पास उसकी अंतिम कृतृत की कोई जानकारी तक नहीं है। पर उसके एक पड़ोसी ने कल रात एक स्त्री व उसके साथ दो बच्चों को टैक्सी से उतरते देखा था। उनके साथ कुछ समान भी उताग गया।और मास्टर काका, उस समय क्या उसने आपके साथ दुर्यवहार नहीं किया?...? और क्या आपने उसे इसी कारण से दंडित नहीं किया था?”

प्रश्न के जवाब में मास्टर जी ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। इससे लगा मानो वे अंतर की किसी

गहन व्यथा से व्यथित हों। भीड़ के अधिकांश व्यक्तियों को जहां मास्टर जी के प्रति अत्यधिक सहानुभूति थी, वहीं कतिपय व्यक्ति मास्टर जी की इस स्थिति पर विजय की अनुभूति कर रहे थे। इस पर भी सभी उनकी अभिव्यक्ति की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

मास्टर जी ने उपस्थित भीड़ पर एक उड़ती नजर डाली और बड़े ही धैर्य, संयम और एक-शब्द सोच-सोचकर धीरे से बोले— “इस समस्या और आपके संवाद पर मैं दो बातें कहूंगा— पहली, तत्कालीन समस्याओं का कैसे निराकरण हो? परंतु यह कटु सत्य है कि अब तक प्राप्त विवरण से कुछ भी स्पष्ट नहीं है। मेरी स्वयं की यह मान्यता है कि शिवराम को दंडित करने के लिए न तो हमारे पास कोई ठोस साक्ष्य है और न कोई वैधानिक शक्तियां ही हैं। आधुनिक समय में किसी पर कोई मनमाना नियम या मनचाही नीति नहीं लादी जा सकती और न लादना ही उचित है। शिवराम एक स्वतंत्र नागरिक है, उसे अपनी इच्छानुसार जीवन जीने दिया जाए। यह उसका एक मौलिक अधिकार है.....।”

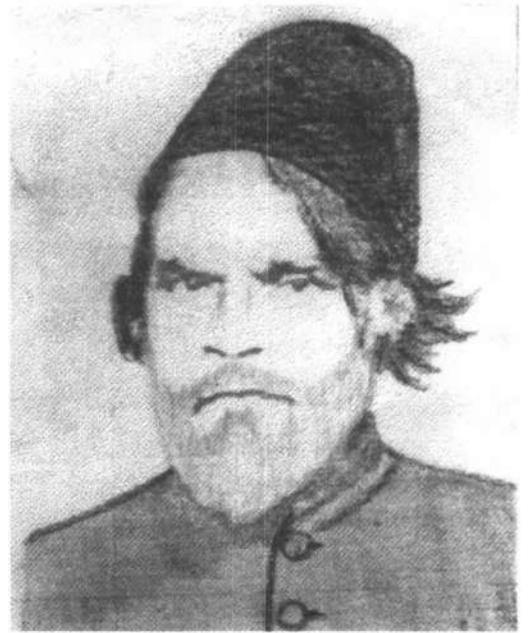
“.....तब फिर उस दिन आपने.....!” कहते हुए उत्साहित हो रहे युवक को हाथ से शांत करते हुए वे बोलते रहे— “धीरज रखो। इतना अधिक उत्साह मत दिखाओ। मेरी दूसरी बात इस तरह है— अधिकतर लोगों की मान्यता है कि मैंने उस दिन मोहल्ले की इज्जत को सुरक्षित रखने के लिए शिवराम पर हाथ उठाया। यह सही नहीं है। वह एक आकस्मिक संयोग ही था। मैं उधर से जाते समय यकायक भीड़ में घुस गया और कुछ ही पलों में एक विकट परिस्थिति बन गई। दो व्यक्तियों के अंह में संघर्ष हुआ। मेरे मिजाज की कमान हाथ से छूट गई। मैं अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर पाया, स्वयंभू की हुंकार में उसे थप्पड़ जमा दिया।”

और इतना कहकर मास्टर काका हृदय से गहरं-गहरे श्वास लेने लगे। □

संपर्क : डा. प्रफुल्ल दवे, 76 क्षितिज, प्रीतम सोसाइटी नं. 1, भडौंच (गुजरात-392001)
शिवचरण मंत्री, श्रीनगर (अजमेर) राजस्थान-305025

बस इतना फ़साना है!

जिगर साहब ने अपने आप को आग के दरिया में कुछ इस तरह जलाया कि वह अपनी जिंदगी में मोहब्बत की मिसाल बन गए। इस इश्क की आग में जितना वह जले, उनकी ग़ज़लों के लफ़्ज उतने ही सुर्ख होते गए। उर्दू के जाने-माने शायर जिगर मुरादाबादी के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा कर रहे हैं सुनील सोनी 'तमीश'



इंसानी जिंदगी में जो भी आला है, खूबसूरत है, हकीकत है, उसे हम जी सकते हैं, जान सकते हैं, उससे रू-ब-रू हो सकते हैं— लेकिन उसे कहना बेहद मुश्किल काम है। इसी फलसफे को जीने वाले और पूरी कायनात में 'मोहब्बत का शायर' के खिताब से जाना जाने वाले, उर्दू साहित्य के नुमाया नामों में से एक हैं और जिन्होंने ग़ालिब, मीर, दाग़ आदि शायरों के समकक्ष अपनी पहचान बनाई।

वालद अली नज़र के साहबजादे— दुनिया जिसे 'जिगर मुरादाबादी' के नाम से जानती है— की पैदाइश 18 अप्रैल 1880 को एक धार्मिक परिवार में हुई। छह साल की उम्र में उनकी आशिकाना जिंदगी की शुरूआत हो गई। एक दिन जब वह घर में अकेले थे, एक कश्मीरी भिखारन की आवाज की कशिश ने जिगर साहब को दरवाजे तक बरबस बुला लिया। दरवाजा खोलते ही उस भिखारन की खूबसूरती की मदमस्त कर देने वाली महक ने जिगर साहब को ऐसा दीवाना बना लिया कि घर में जाकर जितना अनाज व रुपया था, सब उसके हवाले कर दिया। दीवानगी का यह सिलसिला चलता रहा। फिर जब वह आठ साल के हुए तो पड़ोस की एक शादीशुदा औरत के हुस्न पर ऐसे फिदा हुए कि उसके घर के पास बेर के पेड़ के इर्द-गिर्द मंडराते रहे। घंटों अपनी आंखों से उसे निहारते रहते।

उम्र धीरे-धीरे सूरज की तरह जवान हो रही थी। जवान हुए तो ताजमहल के शहर आगरा में वहीदन नाम की एक तवायफ को अपना दिल दे बैठे। मोहब्बत की आग की लौ तेज हुई तो बगैर शर्तों के शादी कर ली। यही वह घड़ी थी जब जिगर के मिजाज में मोहब्बत का कलेवर चढ़ गया। कुछ दिन बीतने पर आशिक और माशूका के रिश्ते के बीच से ग़ज़ल का परंपरागत रकीव नज़र आने लगा और उन्होंने हमेशा के लिए शादीशुदा माशूका को रकीव के हवाले करके आजादी को अपना लिया। जिगर साहब को आजाद खयाली में कहीं न कहीं अफसोस होता। गम को भुलाने के लिए मयनोशी का सहारा लिया। उसी दौरान उनकी मुलाकात मैनपुरी की एक गायिका 'शीराजन' से हुई। यह मुलाकात भी इश्को-आशिकी वाली मुलाकात ही थी इसीलिए कई दिनों तक शीराजन का चेहरा उनके दिलो-दिमाग से नहीं उतरा। शीराजन शायरी

की शौकीन लेकिन दिखावे की जिंदगी जीना चाहती थी। उसके ठाठ-बाट भी ऐसे ही थे। वह गृहस्थ जीवन से अनजान थी। यह मुलाकात भी किसी अफसाने की तरह ट्रेजिक मोड़ ले गई।

इतनी नाकामियों के अफसाने दिल में दफन करने के बाद भी उनके दिल की आग नहीं बुझी और न ही हुस्न के प्रति सम्मान में कमी आई। उस दर्दिले अफसाने की आग को बुझाने के लिए मुसलसल मयनोशी का सहारा लेना पड़ा। अपनी नाकामियों से परेशान होकर उनके मन में भटकाव पैदा हो गया। जिगर साहब की जिंदगी के अब दो साथी थे— भटकाव और शराब, जिनमें उन्होंने सुकून तलाश करने की नाकाम कोशिश की।

उसी भटकाव में जिगर साहब की मुलाकात 'असगर गोंडवी' से हुई। दो शख्सों के पेट के भूगोल ने दोनों को ऐसे मिलाया जैसे गंगा-जमुना की दो धाराएं। असगर गोंडवी चश्मे की तिजारत करते थे और जिगर साहब भी रोजी की तलाश में जिंदगी के गमों के साथ भटक रहे थे। यह मुलाकात एक राह के दो राही व दो मिजाज की मुलाकात थी जो नवाबी शहर लखनऊ में पूरी हुई। वहीं से जिगर साहब का रुख असगर गोंडवी की जमीन 'गोंडा' (जो देवीपाटन मंडल, गोनार्द के नाम से भी जाना जाता है) की तरफ हो गया और फिर जिगर मुरादाबादी साहब हमेशा के लिए गोंडा के अदबी गहवारे के बाशिंदे बनकर बस गए। गोंडा में भी शेरों-शायरी का अच्छा माहौल था। चूंकि जिगर साहब का तखल्लुस 'मुरादाबादी' है इसलिए आमफहमी यह है कि जिगर साहब मुरादाबाद के हैं लेकिन जिगर साहब पैदा हुए मुरादाबाद में और अली सिकंदर से मोहब्बत का शायर 'जिगर मुरादाबादी' बनने का सफर गोंडा के सरज़मीं पर रहते हुए पूरा हुआ और उनकी शायरी को उरूज यहीं लिखते-पढ़ते मिला जिसमें असगर गोंडवी की सोहबत का बहुत बड़ा हाथ था। असगर गोंडवी सूफियाना मरतबे पर अच्छी पकड़ रखते थे। असगर गोंडवी के सूफियाना कलाम का नमूना—

उसका मुख एक जोत है, घूंघट है संसार
घूंघट में वह छुप गया, मुख पर आंचल डार।

...

जाहिद ने मेरा हासिल-ए-ईमां नहीं देखा
रुख पर तेरी जुल्फों को परीशां नहीं देखा।

सुनील सोनी 'तमीश' सुपरिचित लेखक हैं।

हर हाल में पेश-ए-नज़र है वही सूरत
मैंने कभी रु शब-ए-हिजा नहीं देखा।
आए थे सभी तरह के जलवे मेरे आगे
मैंने मगर ऐ दीदा-ए-हरा नहीं देखा।
क्या-क्या हुआ हंगामा-ए-जुनू, ये नहीं मालूम
कुछ होश में आया तो गरेबां नहीं देखा।

असगर गोंडवी ने अपनी साली नसीम बेगम की शादी जिगर साहब से करा दी लेकिन वह भी मयनोशी की नजर हो गई। जिगर साहब ने अपने जीवन और अपनी मयनोशी पर कहा—

सबको मारा जिगर के शेरों ने
और जिगर को शराब ने मारा।

जिगर साहब के खून में शामिल हो गई थी शराब। वह शराब पीकर फूट-फूट कर रोते थे। खुदा से भी दुआएं मांगते थे। शराब उनकी कमजोरी का रूप ले चुकी थी। जब असगर गोंडवी ने मयनोशी को घरेलू जिम्मेदारियों से पूरे तौर से गायब हो देखा तो उन्होंने जिगर साहब के सामने शर्त रखी और शराब व नसीम दोनों में से किसी एक को चुनने पर मजबूर किया। जिगर साहब ने यहां भी शराब को अपनाकर नसीम को तलाक दे दिया। उस वाक्य ने असगर और उनकी पत्नी को झकझोर दिया। इस घटना ने असगर गोंडवी की शादीशुदा जिंदगी में दोनों के बीच दीवार खड़ी कर दी और असगर साहब की पत्नी ने उनको तलाक दे दिया तथा असगर साहब को अपनी साली से निकाह करना पड़ा।

जिगर साहब ने तलाक तो दे दिया लेकिन अपने आप को अपराध-बोध से निकाल न सके, जो उनके दिल में छिपी इंसानियत की प्रतिक्रिया थी। इस जुर्म के अहसास ने जिगर के किरदार को दीवानावार मोहब्बत का रूप धारण करने पर मजबूर कर दिया। यहीं से उनके जहनो-दिल से गुजरते खयालात हर्फ में बयां होते हैं—

हम इश्क के मारों का बस इतना फसाना है
हंसने को तो दुनिया है, रोने को ज़माना है।
ये इश्क नहीं आसां, बस इतना समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।

जिगर साहब ने अपने आप को इस आग के दरिया में कुछ इस तरह जलाया कि वह अपनी जिंदगी में मोहब्बत की मिसाल बन गए। इस इश्क की आग में जितना वह जले, उनकी गज़लों के लफ्ज उतने ही सुख होते गए। असगर और जिगर साहब के ताअल्लुकात में जिंदगी-भर तहजीब व अकीदत कायम रही। इस हादसे ने जिगर साहब के दिल में असगर गोंडवी के लिए मोहब्बत को और बढ़ा दिया। महीनों इधर-उधर भटकने के बाद उनके बेकार दिल और बेसुकून रूह को सुकून असगर की चौखट पर आकर ही मिलता था।

जिगर साहब की जिंदगी ने एक बार फिर करवट बदली। एक नया मोड़ आया। असगर साहब का इंतकाल इलाहाबाद में 1935-36 में हो गया। असगर साहब ने मरते वक्त नसीम को वसीयत की थी कि अगर जिगर शराब छोड़ दें तो उनसे शादी कर लेना। जिगर की शराब पर मोहब्बत ने जीत हासिल कर ली थी। नसीम को दोबारा पाने की ललक ने जिगर साहब को शराब से हमेशा के लिए दूर कर दिया—

मैं इश्क हूं मुकम्मल, मैं शौक हूं मुसलसल
गोया तमाम आलम मेरी ही दास्तां है।

जिगर साहब न सिर्फ मोहब्बत के नगमानिगार थे बल्कि कुदरत ने उन्हें

पुरकशिश आवाज भी बख़्शी थी। उसी आवाज ने गज़लों को सुनने-पढ़ने वालों के दिलों को अपना मुरीद बना लिया था। जमाने की नजर में इस मकबूल शायर के पदों के पीछे का अफसाना कुछ और ही था। उनकी जिंदगी इश्क के दरिया में गोते लगा रही थी। न जाने कितनी रातें बहते आंसुओं की गवाही हैं। फिर भी जिगर साहब मोहब्बत की पूजा करते रहे—

आंख तक दिल से न आए न ज़बां तक पहुंचे
बात जिसकी है उसी आफत-ए-जां तक पहुंचे।
हुस्न के नगमे भी खामोश फुगां तक पहुंचे
अब तेरे हीसले ऐ इश्क यहां तक पहुंचे।
उनका जो फर्ज़ है वो अहले सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मोहब्बत है, जहां तक पहुंचे।

अपने दौर के सबसे ज्यादा मशहूर शायर रहे जिगर साहब भारत-पाकिस्तान— दोनों जगह पूजे जाते थे। लेकिन इस शोहरत से उनकी शख्सियत में कोई बदलाव नहीं हुआ। पाकिस्तान ने दौलत और इज्जत के बड़े-बड़े लालच दिए लेकिन उन्होंने असगर की मजार का मुत्क छोड़ने से इंकार कर दिया।

जिगर साहब की शेरों-शायरी की दुनिया में उनके अपने फलसफे थे। उनका खुद का मानना था कि किताबी तालीम शायरी के लिए नुकसानदेह होती है। शायद इसीलिए गज़ल की तवारीख में अपने हुस्नो-इश्क के सांस्कृतिक रिश्ते की वजह से वह सदा याद किए जाते रहेंगे। उन्होंने अपनी गज़लों में रूह और जिस्म का मिलाप कराने के लिए खुद को आग में सुलगाकर उसी आग से रोशन किया है। जिगर साहब की गज़लें पूरे तौर पर उनकी जिंदगी का अक्स हैं। उन्हें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ने ऑनोरेरी डाक्टरेट की उपाधि दी।

जिगर साहब के तीन काव्य संकलन हैं— *दागे जिगर*, *शौल-ए-तूर* तथा *आतिश-ए-गुल*। उनकी गज़लें जिंदगी के तमाम दौर की नुमाइंदगी करती हैं।

अपनी उम्र के आखिरी दौर में उनकी जिंदगी का फलसफा आम हो चला था। उनकी शख्सियत में सियासी और अवामी धूप-छांव ने गज़लों को संजीदा बना दिया था। इस संजीदगी में इस मोहब्बत के गज़लगो को गज़ल कहना मुश्किल-सा लगने लगा था। उर्दू साहित्य में मोहब्बत की खुशबू फैलाने वाली वह शीरीं आवाज 8 सितंबर 1860 को सदा के लिए सो गई।

जब मुट्ठी खोली तो पत्थर निकले
अर्श से तारे तोड़कर मैं ने आया था।
रह जाए न बाकी कोई अरमान अगर है
कातिल मेरे सीने में अभी खूने जिगर है।

जिगर साहब का मज़ार आज भी अपनी पुरकशिश, पुरकैफ आवाज में राहगीरों को मोहब्बत के अफसाने सुनाता है, जो गोंडा जिले में फैजाबाद रोड, मोहल्ला तोपखाना में बना है।

गोंडा जिले का अदबी गहवारा आज भी जिगर और असगर गोंडवी के नाम से रोशन है। आज भी जिगर साहब व असगर गोंडवी साहब की यादों को-अपने-अपने दिलों में संजोए है। चाहे वह जिगर मार्केट हो, चाहे जिगर मेमोरियल स्कूल हो, चाहे वह जिगर अदबी सोसाइटी हो। गोंडा जिले की जगहों व लोगों का प्यार इस बात की गवाही है कि असगर गोंडवी व जिगर मुरादाबादी गोंडा के अदबी बाग के दो फूल हैं जिनकी खुशबू चारों तरफ फैली है। □

संपर्क : 112, दयानंद नगर, गोंडा-271001 (उ.प्र.)

शहनाई के जादूगर : उस्ताद बिस्मिल्लाह खां

प्रख्यात शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खां के बारे में बता रहे हैं नसीम साकेती

शहनाई और उस्ताद बिस्मिल्लाह खां एक-दूसरे के पर्याय बनकर ऐसे संपृक्त हो गए हैं जैसे शब्दों में अर्थ, फूलों में सुगंध, आशुतोष प्रलयंकर शंकर तथा मां पार्वती। शहनाई शब्द के आभास मात्र से उस्ताद बिस्मिल्लाह खां का नाम अनायास ही मस्तिष्क की शिराओं में कौंध जाता है, क्योंकि शहनाई के वह अकेले वेताज बादशाह थे।

21 मार्च, 1916 को बिहार के डुमरांच की पावन मिट्टी को उस्ताद बिस्मिल्लाह खां को जन्म देने का गौरव जरूर प्राप्त है, लेकिन अपने प्यार, स्नेह और अनुराग से लबरेज साए के आंचल में पनाह देकर परवरिश करने का गौरव आशुतोष की नगरी पावन काशी को है जिसे वह रस से बना बनारस कहकर गद्गद हो जाते थे, उनका दिल बल्लियों उछलने लगता था। उस्ताद बिस्मिल्लाह खां साहब का रिश्ता लखनऊ से भी रहा है। उन्होंने उस्ताद मोहम्मद खां से ख्याल, धमार, ठुमरी तथा होरी की तालीम ली थी।

उनके पिता पैगंबर खां साहब चाहते थे कि वह पढ़-लिखकर कुछ और वनें लेकिन जब उन्हें पता चला कि (बालक बिस्मिल्लाह तीन-चार साल की उम्र से ही छिपकर पिपिहरी बजाया करते थे) उनका झुकाव शहनाई की ओर है, शहनाई के प्रति उनकी लगन तथा समर्पण को देखकर पैगंबर खां साहब ने हथियार डाल दिया। उनके तीन मामा थे— उस्ताद विलायत हुसैन, उस्ताद सादिक अली तथा उस्ताद अली बख्श, लेकिन सबसे अधिक सिखाया उस्ताद अली बख्श ने।...वंशवेलि के संस्कारों तथा निरंतर रियाज ने उन्हें सिद्धहस्त शहनाई वादक बना दिया। धीरे-धीरे उनकी ख्याति की सुगंध फैलने लगी। सर्वप्रथम उन्होंने 1926 में प्रयाग विश्वविद्यालय संगीत सम्मेलन में जनमानस से अपनी चमत्कारिक प्रतिभा का लोहा मनवाया...उनके शहनाई-वादन पर बड़ी देर तक तालियां हवा में गूंजती रहीं। प्रबुद्ध श्रोताओं ने उन्हें अपनी पलकों पर बिठा लिया। इस कार्यक्रम के बाद बिस्मिल्लाह खां साहब ने जीवन-पर्यंत पीछे मुड़कर फिर कभी नहीं देखा। विश्व के जनमानस ने उन्हें अपने अंतःकरण में बिठा लिया। सन 1940 में जब उनके मामा अली बख्श अल्लाह को प्यारे हो गए तब वह अपने भाई शम्सुद्दीन के साथ कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगे। इन दोनों भाइयों की जुगलबंदी की यादें आज भी संगीत-प्रेमियों के दिलों-दिमाग पर छाई हुई हैं।

खां साहब का यमन कल्याण, भैरवी, भैरव तथा पूरिया पर पूरा अधिकार था। वह ठुमरी, चैती, होरी, मुल्तानी, पीलू, गुजरी तूड़ी, तोड़ी, मालकौस, जोगिया, पूरवी तथा कजरी के सिद्धहस्त कलाकार थे। वह तबले के स्थान पर 'खुरदक' का प्रयोग करते थे। तबले की आवाज देर तक गूंजती रहती है जबकि खुरदक शहनाई के स्वर के साथ-साथ चलती है। तबले के स्वर की तरह शहनाई के

स्वर को दबाती नहीं है। चैती, ठुमरी, गीत तथा अन्य महत्त्वपूर्ण रागों को शहनाई के स्वरों में ढालना खां साहब के बाएं हाथ का खेल था— 'कईसे खेलन जाव सावन में कजरिया, बदरिया घिर आई ननदी', 'एहि ठैयां मोतिया हेराय गइल रामा', 'बाबुल मोर नैहर छूटल जाय', 'बाजूवंद खुल-खुल जाय', 'लागत करेजवा में चोट', 'आज खेलो संवरिया के संग होरी' आदि में खां साहब शहनाई की स्वर लहरियों से उनमें जान डालकर समां बांध देते थे। वह नए-नए प्रयोग करते रहते थे। सितार-वादकों, वायलिन-वादकों तथा तबला-वादकों के साथ जब जुगलबंदी करते थे तब थोड़ी देर के लिए लोगों की सांसें रुक जाती थीं। खां साहब ने 'गूंज उठी शहनाई' फिल्म में अपने शहनाई-वादन का हुनर दिखाकर लोगों को चकित कर दिया था।

पावन गंगा के बालाजी की सीढ़ियों पर बैठकर जब वह चार घंटे सुबह और चार घंटे शाम को शहनाई के स्वर को वातावरण में घोलते थे, तो लगता था कि गंगा के प्रवाह में थोड़ी देर के लिए ठहराव-सा आ गया है। शहनाई के सुरों में खां साहब की तरह वह भी थोड़ी देर के लिए डूब जाती थी और शहनाई के सुर रुकते ही खुशियों को साथ लिए इठलाती-बलखाती अपनी मंजिल की ओर बढ़ जाती— अपना रास्ता नापने के लिए।

लेकिन 21 सितंबर को रात दो बजकर बीस मिनट पर जब गंगा अपने चिर-परिचित अंदाज में बालाघाट को स्पर्श कर रही थी, तो उसे लगा कि जैसे यहां के घाट, यहां की हवाएं, फिजाएं, मंदिर-मस्जिद, चौबारे, गुरुद्वारे, पेड़-पौधे सब खामोश हैं; गम की तस्वीर बने हुए हैं। आखिर बात क्या है? कहीं से आवाज उभरी— 'शहनाई सदा के लिए खामोश हो गई! सुबहे बनारस की सांसें थम गईं।'

यह सुनते ही गंगा की उताल लहरें दहाड़ मारकर ऊपर को उछलीं और देर सारे आंसुओं के रूप में गंगाजल में तब्दील हो गईं। गंगा का चेहरा सफेद होकर खामोशी की तस्वीर बन गया। अब सुबह-शाम कौन सुनाएगा मुझे शहनाई! हे भगवान! यह आपने क्या किया? मेरी बची-खुची घिसटती जिंदगी के कुछ पल उस्ताद को दे देते, तो अभी से शहनाई के स्वर सदा के लिए खामोश तो न होते! सुनो भगवान मेरी ही तरह मानव-जाति ही नहीं, यहां के दरो-दीवार, हवाएं, फिजाएं, सांड़, सीढ़ी तथा सन्यासी भी कह रहे हैं, क्योंकि उनकी शहनाई का जादू सबके सिर चढ़कर बोलता था! संकटमोचन का रुदन सुन रहे हो न! मंदिर के प्रांगण का वह भाग, जहां बैठकर खां साहब शहनाई की स्वर लहरियां मंदिर के वातावरण में घोलते थे, आज स्वयं के आंसुओं से भीग गया है। दिल जब रोता है, तो ऐसा ही होता है। लगता है, उस स्थल पर किसी ने पानी लाकर उड़ेल दिया है, लेकिन वह पानी नहीं, दिल की गहराइयों से निकले हुए आंसू हैं।

नसीम साकेती सुपरिचित लेखक हैं।



हमारी लोक संस्कृति आज जिस मुकाम पर पहुंची है उसमें लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं, लोककलाओं, लोकमंचों और लोक साहित्य के क्षेत्र में सृजनरत साहित्यकारों, गायकों और विविध कला-विधाओं से जुड़े संस्कृतिकर्मियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस सांस्कृतिक परिदृश्य को खेल-जगत की ऐसी प्रतिभाओं ने भी पूर्णता दी है जिनके व्यक्तित्व और कौशल ने खेलों को भी कला की कमनीयता प्रदान की है। ऐसे अनेक मूर्धन्य लोक साहित्यकार, कलाकार और खेल-प्रतिभाएं हुई हैं जिन्होंने भारतीय जनमानस में गहरी पैठ बनाई है। इन महापुरुषों ने ऐसे मानक प्रस्तुत किए, जो भारतीय संस्कृति में रच-बस गए। दीर्घा लेखमाला के अंतर्गत ऐसे यशस्वियों तथा उनसे जुड़ी लोक विधाओं के बारे में चर्चा की जा रही है। बुल्लेशाह, गोनू झा, महेंद्र मिसिर, गामा, तीजन बाई, आगा हश्म काश्मीरी, वारिस शाह, राधेश्याम कथावाचक, हबीब तनवीर के बाद इस बार के व्यक्तित्व हैं प्रख्यात शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खां।

बेनियाबाग की संकरी गली ने रोते-रोते थक-हारकर अपनी आंखों को बंद कर लिया है, शायद यह सोचकर कि अब जब उनकी आंखें अपने खां साहब को नहीं देख सकेंगी, तो वह किसी को भी देखना नहीं चाहेंगी, क्योंकि खां साहब को देखकर उनकी आंखों को सुकून मिलता था।

स्मृतियों को कुरेदने पर यादों की रोशनी में बेनियाबाग के उत्तरी छोर पर पतली-सी गली जो अब बिस्मिल्लाह खां की गली के नाम से जानी जाती है, एक चित्र उभरता है, जहां मैं गली के आखिरी छोर पर तीन मंजिला मकान के दरवाजे पर बड़ी आसानी से पहुंच जाता हूँ, क्योंकि बनारस का बच्चा-बच्चा खां साहब को जानता है। आटो वाले, रिक्शा वाले, अमीर-गरीब, साधु-फकीर, जिससे भी पूछो, उसको जवान की नोक पर खां साहब का नाम, खां साहब का पता करवटें बदलने लगता है। खां साहब के छह बेटों में नाजिम खां साहब ने मुझे उनके कमरे तक पहुंचाने में मेरी रहबरी की। कमरे में पैर रखते ही मेरे होश उड़ गए, क्योंकि मेरे जेहन में खयाल था कि उस विश्वप्रसिद्ध शहनाई-वादक के व्यक्तित्व के समान उसका रहन-सहन भी वैसा ही होगा। लेकिन यह तो सादगी, साधारण साधु-संत की तरह फकीराना जिंदगी जी रहे थे। एक छोटा-सा कमरा जिसका हरा रंग बदरंग हो गया था। कमरे के पलस्तर पर भी कई जगह खां साहब के बुढ़ापे के असर का रंग चढ़ गया था। एक कुर्सी, एक पंखा और एक चारपाई...यह था शहनाई के शहंशाह कहलाने वाले महान व्यक्ति के जिंदगी जीने का ढंग— एक आम आदमी का। जब मेरी सोच की तंद्रा टूटी, तो सलाम-दुआ के बाद वह बोले— “मेरे रहन-सहन के बारे में सोच रहे थे न?”

मैं सोचने लगा— सचमुच के सूफी संत हैं यह! मैं सन्न रह गया और उधर से ध्यान हटाते हुए अपना परिचय दिया— “मैं नसीम साकेती....!”

“अच्छा नाम है! नाम से तो एकदम गंगा-जमुनी तहजीब लगती है,

वरना लोग तो बड़ा लंबा-चौड़ा नाम अपने बाप-दादा तथा खानदान के साथ जात का भी पुछल्ला लगा देते हैं। मेरे भाई का नाम शमशुद्दीन था और मेरा नाम कमरुद्दीन के रूप में प्रस्तावित था, लेकिन एक दिन मेरे दादाजी कहीं बाहर से आए, तो लोगों ने कहा— ‘मुबारक हो, खां साहब!’

‘क्या बात है...? दादा बोले।’

‘आप दादा बन गए!’

‘बिस्मिल्लाह!’ दादा की जवान से बेसाख्ता निकल पड़ा और मेरे ‘बिस्मिल्लाह’ नाम पर मोहर लग गई। बिस्मिल्लाह का अर्थ होता है— शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से!

“मेरा नाम देखो— बिस्मिल्लाह! कितना छोटा नाम है! शहनाई ने अलबत्ता ‘खां’ का इजाफा कर दिया।’ बड़ी देर तक वह अपनी जिंदगी की किताब के पन्ने पलटते रहे उन्होंने बताया मैं बेनियाबाग के सामने वाले हाते के अखाड़े में कुश्ती लड़ा करता था। मैं कबड्डी तथा फुटबाल का भी अच्छा खिलाड़ी था। अगर शहनाई-वादक न बनता, तो फुटबाल का बहुत बड़ा खिलाड़ी बनता और हिंदुस्तान का नाम रोशन करता।”

मैंने कहा— “शहनाई में भी तो आपका बहुत बड़ा नाम है। हिंदुस्तान का नाम ऊंचा किया है आपने! आज़ादी के पहले जश्न के मौके पर लाल किले की प्राचीर से ध्वजारोहण से पहले आपको शहनाई-वादन का गौरव प्राप्त है। सुना है, नेहरू जी की यह प्रबल इच्छा थी कि उनके ध्वजारोहण से पहले आपका शहनाई वादन हो!”

“जी हां, नेहरू जी की यही इच्छा थी और अब मेरी अंतिम इच्छा है कि मैं इंडिया गेट पर स्वतंत्रता दिवस के शुभ अवसर पर शहनाई बजाऊं।”

“जरूर बजाइए!...इंडिया गेट भी आपके स्वागत के लिए पलक-पांवड़े बिछाए होगा! वह भी झूम उठेगा... लालकिले की तरह!”

मैंने पूछा— “गंगा की सीढ़ियों पर रोजाना सुबह-शाम शहनाई-वादन आपकी दिनचर्या थी, लेकिन अब....?”

“भैया, जाने किसकी नजर बीमारी की शक्ल में लग गई! अब नहीं जा पा रहा हूँ। बड़ा दुख हो रहा है। लगता है कि जीते-जी मर गया हूँ!” और वह एकदम गंभीर होकर छत की ओर देखने लगे।

“बाबा, क्या आपको नहीं लगता कि आपके व्यक्तित्व के हिसाब से यह कमरा काफी छोटा है? देश-विदेश से बड़े-बड़े लोग मिलने आते होंगे!”

“जरूर आते हैं, लेकिन वे मेरे घर की वजह से नहीं, बल्कि मेरी शहनाई की वजह से आते हैं! तुम्हीं बताओ, क्या मेरी शहनाई में इस छोटे-से कमरे का छोटापन दिखता है! ...इसी बनारस में बहुत-से लोगों ने बड़े से बड़ा बंगला देने की बात कही, लेकिन मैंने मना कर दिया। मुझे इस कमरे की ईंट से जो प्यार की रोशनी मिलती है, उसे मैं बयान नहीं कर सकता। यह कमरा मेरी जिंदगी के अच्छे-बुरे दिनों का गवाह है। और सुनो, जहां तक रहने की बात है, हिंदुस्तान ही नहीं, बल्कि जब मैं अमेरिका बजाने गया था, तो वहां मुझसे कहा गया था कि आपको एक महलनुमा घर यहां दिया जा सकता है; अब आप यहीं रह जाइए। जानते हो, मैंने क्या जवाब दिया था उनको? मैंने कहा— मैं यहां रह सकता हूँ, लेकिन क्या तुम मेरा बनारस, गंगा तथा उसकी सीढ़ियां यहां ला सकते हो...!”

मैंने कुरेदा— “और कबीरदास जी...?”

वह मुस्कराए, तो सामने के दो दांत चमक उठे और बोले— “वह तो जिंदगी-भर काशी में रहे, और मरने मगहर चले गए, जाने क्यों? लेकिन मैं तो हर वक्त अल्लाह से यही दुआ करता रहता हूँ कि हे अल्लाह! मुझे मौत बनारस में मिले।” और उस पीर-फकीर की दुआ कबूल हो गई, जबकि प्रधानमंत्री ने संदेश भिजवाया था, कि हवाई जहाज भेज दिया जाए; आप दिल्ली में आ जाएं, यहां आपका इलाज कराया जाएगा। मुख्यमंत्री ने भी ऐसा ही निवेदन किया था। लेकिन वह बनारस छोड़ने को राजी नहीं थे। शायद वह अल्लाह की मर्जी को जान गए थे कि उनकी रोजाना की दुआ अल्लाह ने कबूल कर ली है!

मैंने संकटमोचन के वम-क्वास्ट की बात की, तो उनकी आंखों में शोले उत्तर आए। वह एकदम भड़क उठे— “वे सुअर की औलाद, हरामी, जहन्नुमी हैं जिन्होंने इंसानियत का खून किया है। हमारी गंगा-जमुनी तहजीब के पेट में छुरा भोंका! अल्लाह उन्हें माफ नहीं करेगा! दहशतगर्दों का न तो कोई धर्म होता है, न ही मजहब। भैया, मैं तो गंगा-जमुनी तहजीब के लिए मरा जा रहा हूँ और कुछ लोग जो देश तथा इंसानियत के दुश्मन हैं, इस माहौल को बिगाड़ना चाहते हैं, इसमें रोड़े अटकाना चाहते हैं, लेकिन वे मरदूद हरगिज कामयाब नहीं होंगे!...बनारस के माहौल में जहर घोलने की बहुत बार कोशिशें की गईं, लेकिन भैया, यह ‘रस’ से बना बनारस है! इस बने-बनाए रस में जहर काम नहीं कर सकता! जहर भी रस में घुल जाएगा!... नज़ीर बनारसी का एक शेर याद आ रहा है... (सोचते हुए) कुछ भूल रहा हूँ, शायद कुछ ऐसा था —

मैंने नमाज़ें पढ़ी हैं कितनी बार
गंगा तेरे पानी से वजू करके।

एक बार पूछा गया था कि बनारस में क्या है, जयाब मिला—‘बनारस में सुबहे बनारस है, काशी विश्वनाथ हैं, गंगा है और विस्मिल्लाह खां...!’ इस वाक्य से उस्ताद विस्मिल्लाह खां का व्यक्तित्व प्रज्वलित दीपशिखा बनकर रोशनी की मीनार बन जाता है। विश्वनाथ मंदिर के कपाट खां साहब की शहनाई की मंगलध्वनि से प्रातः खुला करते थे। वह सांप्रदायिक सौहार्द के प्रतीक थे... जहां एक ओर वह गंगा के बालाघाट, संकटमोचन तथा विश्वनाथ मंदिर में

शहनाई को गुंजायमान करते थे, वहीं दूसरी ओर वह फातमान-कर्वला में पांचवीं तथा आठवीं मोहरम को मातमी-धुन बजाकर शोहदाए कर्वला को अपनी श्रद्धांजलि बड़ी तन्मयता से पेश किया करते थे। नमाज़ तथा रोजा के पाबंद थे।

यदि उन्हें खाटी बनारसी कहा जाए, तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगा, क्योंकि वह बनारस में घुल-मिल गए थे। वह स्वयं कहा करते थे कि ‘मैं बनारसमय हो गया हूँ, मैं बनारस के बिना जिंदा नहीं रह सकता, उसी तरह जैसे पानी के बिना मछली!’ इस्लाम में कहा गया है कि मौत को हरदम सामने रखिए। वह हरदम कहा करते थे—

मौत क्या है, जमाने को समझाऊं क्या
एक मुसाफिर को रस्ते में नींद आ गई!....

और शहनाई के शहंशाह को 21 सितंबर 2006 को दो बजकर बीस मिनट पर ऐसी गहरी नींद आई कि फिर जाग न सके!... चिरनिद्रा ने उन्हें अपने अंक में भर लिया— सदा के लिए। उन्हें बचाने का डाक्टरों ने भरसक प्रयास किया, लेकिन, कुरान के दर्शन के अनुसार—‘कुल्ले नफिसन जायकतिल मौत।’ अर्थात् हर नफस (जीव) को मौत का मजा चखना होगा...और खां साहब ने बड़ी दिलेरी से मौत का मजा चखा और उनकी शहनाई के स्वर भी सदा के लिए खामोश हो गए। उन्हें बनारस के फातमान-कर्वला में राष्ट्रीय सम्मान के साथ सुपुर्दे खाक किया गया। उनके परिवार, सगे-संबंधियों संगीत-प्रेमियों, राजनीतिज्ञों तथा हर धर्म-जाति के चाहने वालों ने उन्हें अश्रुपूरित नेत्रों से अंतिम विदाई दी। जब उन्हें सुपुर्दे खाक किया जा रहा था, तो लोगों ने देखा कि आसमान की आंखों से भी आंसू टपक रहे थे— फुहारों के रूप में। फातमान-कर्वला के पेड़-पौधों को देखकर लगता था, कि वे भी गम में डूबे ‘नौहा’ कर रहे हैं, क्योंकि जब खां साहब इस परिसर में अपनी शहनाई बगल में दवाए आते थे, तो लगता था कि पेड़-पौधे उन्हें अपने आगोश में लेकर अपना प्यार उडेलना चाहते हैं!....

फातमान-कर्वला की पावन धरती कोई साधारण धरती नहीं है। आजादी के परवाने टीपू सुल्तान, जिसने कहा था— ‘शेर की एक दिन की जिंदगी गीदड़ की सौ साला जिंदगी से बेहतर है’, वहादुशाह ज़फ़र जैसे देशभक्त बादशाह— जिसकी बदनसीबी ने उन्हें दो गज़ जमीन भी न मिलने का असह्य दर्द दिया था, उस दर्द को लिए हुए वह रंगून में चिरनिद्रा में सो गए थे— के भाई तथा अपने जमाने की असाधारण नृत्यांगना तथा शायरा उमराव जान अदा तथा जाने कितनी जानी-अनजानी हस्तियां वहां दफन हैं!

शहनाई के शहंशाह के रूप के अतिरिक्त गंगा-जमुनी तहजीब तथा सांप्रदायिक सौहार्द का उनका जो रूप था, यदि उसकी विशद व्याख्या तथा मीमांसा की जाए, तो एक वृहद काल-कथा बन सकती है। भारतरत्न विस्मिल्लाह खां साहब स्वयं शायद चिड़ियों के प्रतीक थे। वह चिड़ियों के दर्शन को अपने अंदर गहराई तक आत्मसात कर चुके थे, क्योंकि चिड़ियों के लिए उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर ने कहा है—

परिंदों में कभी फिरकापरस्ती क्यों नहीं होती
कभी मंदिर पे जा बैठे, कभी मस्जिद पे जा बैठे।

और अंत में जनाब आफ़ाक़ हैदर साहब के मशहूर शेर को उद्धृत करके अपनी लेखनी को विराम देता हूँ—

हजारों बरसों में कोई होता है विस्मिल्लाह
जमीं पर रोज़ कहां आसमां उतरता है!

□

संपर्क : 454/2 कंचना विहारी मार्ग, आदि नगर एन्क्लेव, लेन-5, कल्याणपुर (पश्चिम), लखनऊ-226022

अगम्य हिमखंडों के रहस्य-पट खोलने को!

त्रिपाठी जी अपने सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व के कारण सभी के लिए प्रेरक बने रहे। वह प्रकाशन के प्रति उदासीन थे। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने स्वर सेतु संग्रह प्रकाशित करवाया। उनके भीतर बहुत कुछ था। भीतर से बाहर की दुनिया में उतरना उन्हें श्रेयस्कर नहीं लगता था। तीसरा सप्तक के चर्चित और सुविख्यात कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी के काव्य संसार पर बृजबाला सिंह

तीसरा सप्तक के कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी आधुनिक कविता में विशेष रूप से सम्मानित एवं प्रतिष्ठित हैं। छायावाद के बाद के कवियों ने अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को बनाए तथा बचाए रखने के लिए जहां अनेक वादों का सहारा लिया, वहीं त्रिपाठी जी बिना किसी की चिंता किए आध्यात्मिक चिंतन के साथ, उन्मुक्त भाव से संसार में रहकर, सांसारिकता से दूर होकर सृजनरत रहे। प्रकाशन और आत्म-प्रकाशन कभी उनकी चिंता का विषय नहीं बना। संभवतः अंग्रेजी का अध्यापक होने के कारण उन्होंने श्री अरविंद का महाकाव्य सावित्री पढ़ा होगा। तदुपरांत वह इस दर्शन एवं साहित्य से ऐसे अभिभूत हुए कि आजीवन उसी में रमे रहे। तीसरा सप्तक में अज्ञेय ने उन्हें प्रथम स्थान देकर अपना अघोषित सम्मान व्यक्त किया है। यद्यपि इन कवियों के विषय में अज्ञेय ने ईमानदारी से यह सत्य स्वीकार किया है कि 'संकलित कवियों के विषय में अलग-अलग कुछ कहना कदाचित् उनके और पाठक के बीच में व्यर्थ एक पूर्वग्रह की दीवार खड़ी करना होगा।' किंतु क्रम-निर्धारण करते समय अवश्य कोई महत्वपूर्ण बात उनके मन में रही होगी।

तीसरा सप्तक का प्रकाशन 1959 में भारतीय ज्ञानपीठ से हुआ था जिसमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी की इक्कीस कविताएं 'परिचय' एवं 'आत्मनिवेदन' के साथ सबसे पहले संकलित हैं। निःसंदेह इन कविताओं ने उस समय पाठकों का एक आदर्श समाज बनाया होगा क्योंकि इनमें प्रारंभिक दौर का अपरिपक्व कवि कहीं दिखाई नहीं देता। पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश ने प्रतिभावान त्रिपाठी जी के कवि का निर्माण किया था। 1919 में रायबरेली के एक गांव में जन्मे त्रिपाठी जी की हाई स्कूल तक की शिक्षा इलाहाबाद में तथा संपूर्ण शिक्षा कानपुर में संपन्न हुई। अंग्रेजी विषय में एम.ए. करने के बाद टीकमगढ़, झांसी के सर्वे विभाग में कार्य करने के साथ-साथ सनातन धर्म कालेज, कानपुर में अंग्रेजी का अध्यापन किया। 1950 से भारत सरकार के सूचना मंत्रालय में हिंदी संपादक रहे। उन्होंने श्री अरविंद सोसाइटी, उ.प्र. के अध्यक्ष पद पर पूरी निष्ठा से कार्य किया।

डा. बृजबाला सिंह सुपरिचित लेखिका हैं।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी के प्रारंभ से ही दो शौक थे— पर्वतीय प्रदेश की यात्रा तथा होड़ा-होड़ी। कहा जाता है कि एक बार जेठ की दोपहरी में गंगा की तपती रेत पर नंगे पांव दो मील चले थे। श्रमसाध्य, त्यागमय एवं साधनामय दृष्टिकोण ने संभवतः उन्हें श्री अरविंद दर्शन की ओर उन्मुख किया होगा। मितभाषी त्रिपाठी जी ने जीवन का अधिकांश एकाकार में बिताया। पैदल चलना तथा तीरंदाजी उनके प्रिय कार्य थे। रामायण, गीता और उपनिषद् उन्हें कंठस्थ थे किंतु मित्रों का नाम तक उन्हें विस्मृत हो जाता था। स्पष्ट है कि सांसारिकता का कोई भी आकर्षण उन्हें बांध नहीं पाया था। उनके घनिष्ठ मित्र डा. सुरेश चंद्र त्यागी ने बातचीत में बताया कि त्रिपाठी जी अपने सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व के कारण सभी के लिए प्रेरक बने रहे। वह प्रकाशन के प्रति उदासीन थे। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने स्वर सेतु संग्रह प्रकाशित करवाया। प्रदर्शन उन्हें प्रिय नहीं था। श्री अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर उन्होंने कुछ कविताओं का अनुवाद किया। उनके भीतर बहुत कुछ था। भीतर से बाहर की दुनिया में उतरना उन्हें श्रेयस्कर नहीं लगता था। अध्ययन एवं मनन के पथ का यह मनस्वी 2 नवंबर 2005 को इहलोक से विदा होकर अमर हो गया।



प्रयाग नारायण त्रिपाठी

प्रयाग नारायण त्रिपाठी के रचनात्मक मन के दो प्रमाण प्राप्त हैं। तीसरा सप्तक की इक्कीस कविताएं तथा एकमात्र कविता संग्रह स्वर-सेतु, जो मित्रों के आग्रह पर प्रकाशित हुआ। संग्रह की भूमिका में त्रिपाठी जी ने लिखा है— 'यह पराजय बड़ी सुखद लग रही है। इसने मन को बहुत हल्का कर दिया है। इससे वे शब्द, वे स्वर, वे गुणगुनाहटें, जिन्हें मैंने अपनी मान रखा था, अब आपकी हैं, सबकी हैं। स्व-कृतियों को, जैसे कि स्वयं को किसी को सर्वांशतः दे देना—इससे बड़ा परितोष, इससे महत्तर उपलब्धि और क्या हो सकती है?'

तेरह वर्ष की आयु में त्रिपाठी जी ने पहली कविता गोस्वामी तुलसीदास पर लिखी—

करता गान कला का जिसकी
भारत-भू का प्रति आवास
भारत-हृदय, भक्त-चूड़ामणि
गोस्वामी श्री तुलसीदास।

रामभक्त वैष्णव परंपरा में जन्मे त्रिपाठी जी ने अपने आत्म-निवेदन में स्वीकार किया है कि 'काव्य विषयक मेरे आरंभिक विचार *रामचरितमानस*, *विनय पत्रिका*, *कवितावली*, *गीतावली* और *ब्रज-माधुरी-सार* के निरंतर अध्ययन से बने। फिर 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी को पढ़ा। माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन, दिनकर, नरेंद्र शर्मा और अज्ञेय— ये सभी मुझे समय-समय पर प्रिय लगे हैं।' त्रिपाठी जी ने हिंदी कविता के शीर्षस्थ कवि तुलसीदास से लेकर प्रयोगवाद एवं नई कविता के जनक अज्ञेय के साहित्य का गहन अध्ययन एवं उससे प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण करके कविता का शृंगार किया। ईशभक्ति, देशभक्ति, समस्त मानवता के प्रति आस्था एवं प्रेम-भाव का श्रेय इन कवियों को त्रिपाठी जी ने दिया है। रूढ़ियों से मुक्ति किंतु परंपरा का निर्याह, वैज्ञानिक चिंतन के साथ-साथ आध्यात्मिक सांच एवं अस्तित्व बांध उनकी कविता में स्वाभाविक रूप से देखे जा सकते हैं। प्रकृति में, मानव-प्रकृति में तथा विराट सत्ता में सौंदर्यबोध उन्हें इन्हीं कवियों से मिला था जो उनकी कविता में कहीं प्रखर तो कहीं प्रक्षिप्त है।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी का लेखन व्यवस्थित ढंग से 1936 में प्रारंभ हुआ। कुछ कविताएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। 1959 में अज्ञेय ने *तीसरा सप्तक* में एक साथ इक्कीस कविताएं संकलित कीं। इन कविताओं के शीर्षक हैं—'समाधिस्थ', 'संख्या-भ्रम', 'यह हाथ', 'लक्ष्य', 'प्रश्न', 'अधूरा गीत', 'यह उद्देलन', 'नदी-तट', 'सांझ और मेरा प्रश्न', 'अंतिम दो क्षण', 'नई वरसात', 'चाहता हूँ', 'विदा के क्षणों में', 'सैलानी', 'समानांतर लकीरें', 'आशिष', 'प्रभु की खोज', 'आतशी शीशा', 'मृत्युंजय छंद', 'सांसें', 'एक गीत', 'लक्ष्यवेध', 'मकड़ी-जाल' और 'मैं विंदु'। इनके साथ ही 'परिचय' एवं 'आत्मनिवेदन' भी हैं। *तीसरा सप्तक* की इन कविताओं पर विचार करने से पूर्व त्रिपाठी जी के कविता विषयक विचारों को जानना आवश्यक है। उन्होंने विनम्रतापूर्वक लिखा है—'मेरा विश्वास है कि कविता दर्शन नहीं है, अध्यात्म नहीं है, मतवाद नहीं है। सर्वोपरि वह अभिव्यक्ति है जो पाठक को उद्देलित करती है। इस उद्देलन के प्रभाव में आप आनंदित भी हो सकते हैं और क्षुब्ध भी। आप में प्रेम भी जाग सकता है और घृणा भी। आप क्रांति में भी प्रवृत्त हो सकते हैं और समाधि में भी। पर आनंद, क्षोभ, प्रेम, घृणा, क्रांति, समाधि—इनमें से एक भी कविता का साध्य नहीं है (दूसरे शब्दों में, सभी कुछ साध्य है)। कवि तो मानो वह पनडुब्बी है जो वर्तमान के अनुकूल सागर में डूबकर, तल में स्थित सीपी का मुंह चीरकर, मोती निकाल ले आता है और आपको सौंप देता है।'

तीसरा सप्तक की कविताओं में आत्म-स्वीकार भी है और आत्म-परिष्कार भी। 'समाधिस्थ' कविता में त्रिपाठी जी ने अपनी रचना-प्रक्रिया एवं रचनाधर्मिता पर विचार किया है—

गद्गद् चिंतन, आराधन, एकांत समर्पण की घड़ियों में
वही-वही है : मेरा आश्रय, मेरा आत्मज पूर्णभूत मैं
जिसको स्वर में, लय में, शत चित्रों में
शत-शत संकेतों में तुमको देना चाह रहा हूँ / पर वह मेरी लब्धि
शब्द सागर-तटवासी अचल कपिल वह— / समाधिस्थ है—
कोंच रहे हैं उसको रह-रह
मेरे व्याकुल यत्न सहस्र-सहस्र सगर-पुत्रों से सज्जित !

कविता के अंत में दर्पण-गिरि-गुहा निवासी के जागने की प्रतीक्षा करना और कुछ नहीं 'वह परम अभिव्यक्ति' है जिसे मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में' में खोजा है और अज्ञेय ने 'बावरा अहेरी' में निवेदित। 'उद्देलन' कविता में कवि समय की अनवरत धारा में बहते हुए यह उम्मीद लगाए हुए है कि उसे कोई-न-कोई सहारा अवश्य मिलेगा। वह संयम बनाए हुए है। उसमें धैर्य है। वह नदी के

तट को देखता है और मुग्ध होता है किंतु मन में एक उद्देलन की स्थिति बनी रहती है। उसका प्रश्न काल से है जो एक-एक करके सबको निगलता रहता है—'उस अंधेरे की भांति जो नदी, झुरमुट, क्षितिज तथा अंबर, सबको अपनी चादर में ढक लेता है—

...देखो, चुक गई यह सांझ कितनी शीघ्र / गहराया अंधेरा
रात घिरने लगी : निश्चित, भयावह, निस्तब्ध।
आओ, अब उठें, वापस चलें : / एकांत है, वन है, नदी का तीर है—
दुर्दांत कोई पशु न हमको सूंघ ले
—मैंने सुना है, सच कि हिसक जानवर में
प्यास होती है बहुत ही तीव्र / ताजे आदमी के खून की—
याकि घर के रास्ते ही / घुप अंधेरे में कहीं हम खो न दें
इसलिए आओ, उठें वापस चलें हम...
आह, मेरा प्रश्न / जिसका विलम्ब ही रहा उत्तर
किंतु जो है प्रस चुका अस्तित्व को संपूर्ण
जैसे नदी, झुरमुट, क्षितिज, अंबर को : अंधेरा !

तीसरा सप्तक में कुछ छोटी कविताएं भी हैं। ये कविताएं आकार में छोटी हैं। वस्तुतः इनके भीतर अपार भाव-संसार हैं। 'यह हाथ', 'लक्ष्य', 'प्रश्न' जैसी कविताएं इसी कोटि में आती हैं। 'यह हाथ' कविता का कवि अपने को जिंदगी का मुसाफिर बताता है—'ऐसी जिंदगी का, जो कठिन चुनौतियों के बीच रास्ता बनाकर चलती है, जिसके सामने 'लक्ष्य' है। जहां सब कुछ अपने तरीके से परिभाषित है। सौदा, सेवा, अर्पण, पीड़ा जैसे भाव-शब्द अपनी सार्थकता तभी रखते हैं जब 'सोऽह' हो। कवि के अनुसार 'सोऽह' का 'त्व' में लय हो जाना ही परम लक्ष्य है। कवि के अंतस् में अनेक प्रश्न बुलबुले के सदृश उठते रहते हैं। कभी वह किसी वृक्ष से पूछता है कि वह क्यों चुपचाप पृथ्वी के वक्ष से वर्ष की तरह चिपका रहता है। उसका अगला प्रश्न वर्ष से है जो निर्वसन होकर निश्चेष्ट पर्वतों के वक्ष से चिपकी रहती है जैसे चांद आकाश से। यहां चिपकना जड़ों की ओर जाना है, ऊपर उठना है, पिघलना है—किसी धरातल अथवा किसी आकाश को छूने के लिए।

'संख्या-भ्रम' कविता के सर्जक के पास एक रहस्योद्घाटन है। यहां शब्द-कौतुक भी है और दर्शन की ओर संकेत भी—

वह : कि जिसने लहर का मन गुदगुदाया
वह : विटप के प्राण को जिसने दिया झकझोर
वह : किया जिसने हिया विच्छिन्न बादल का—
एक ही थी बात / लेकिन दो घड़ी को
तीन का था शोर / चारों ओर !

यहां एक ही प्राण वायु है, लेकिन अज्ञानतावश लोग तीन कारण मानते हैं। अज्ञानता का यही शोर कहीं एक जगह ठहरा हुआ नहीं बल्कि चारों ओर सुनाई देता है।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने अपेक्षाकृत कम कविताएं लिखी हैं। अति लेखन के पक्षधर वह कभी नहीं रहे। उन्होंने लेखन को एक गंभीर कर्म माना और सदैव अपनी रचनाओं में परिष्कार करते रहे। उनका एकमात्र कविता संग्रह 1988 में प्रकाशित हुआ जो मित्रों के आग्रह का प्रतिफल है। इस संग्रह के विषय में उन्होंने स्वीकार किया है कि 'इन कविताओं के संबंध में पहली बात तो यह है कि इनका रचनाकाल प्रायः पचास वर्ष की अवधि का है। इस सुदीर्घ अवधि की अनेक आरंभिक रचनाओं को छोड़ दिया गया है। परंतु प्रथम तीनों ही खंडों में कुछ पूर्ववर्ती रचनाओं को शामिल कर लिया गया है। कारण

यह रहा है कि अभिव्यक्ति की शैली में अंतर के बावजूद वस्तुगत सत्य की खोज, वैचारिकता एवं भाव-भूमि की दृष्टि से उन्हें शामिल करना मुझे जरूरी लगा।

स्वर-सेतु कविता संग्रह की कविताएं चार खंडों में विभक्त हैं। 'वृक्ष और वल्लरी' संग्रह का प्रथम भाग है जिसमें बकौल कवि, '1940 से 1950 तक की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं को दिया गया है। ऐसा करते समय मेरे मन में यह बात थी कि जिस वैचारिक भूमि से मेरे कवि-मानस ने यात्रा प्रारंभ की थी, उसका स्वल्प परिचय मेरे पाठक वर्ग को मिल सके। यह वह भूमि थी जिसमें पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी का प्रभाव स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा था, लेकिन साथ ही छायावादी वायवीयता की वह छाप बहुत गहराई में या बहुत समय तक टिक नहीं पाई और नश्वर में शाश्वत की खोज की मेरे रचनाकार की मूलभूत अंतर्धारा उससे छुटकारा लेती हुई अगली भाव-भूमियों की ओर बढ़ गई। इस खंड की सात कविताओं में से 'नश्वर', 'जीवन-तृण', 'चार मुक्तक', 'मेरी प्यास' तथा 'वृक्ष और वल्लरी' को पढ़ने पर कवि के इस महत्वपूर्ण वक्तव्य की सार्थकता मुखरित होती है। प्रारंभिक कविताओं पर छायावादी प्रभाव स्पष्ट है—

आई संध्या, पश्चिमी क्षितिज में डूब गला लो मार्तंड
आई संध्या, छाए नभ में सतरंगी सुंदर अभ्रखंड
चिड़िया नीड़ों की ओर चली, कलियों ने द्रुग कर लिए बंद
आई संध्या, छा गई शांति, हो गई दिवस की ज्योति मंद!

प्रभात की किरणें संसार को अपने प्रकाश से, अपनी ऊर्जा से ऊर्जस्वित कर देती हैं। कवि के मन में भी आशा का स्वर जागता है। उसे लगता है, दिन, रात मानव-जीवन में अभाव एवं स्नेह के भावों का संचार करने आते हैं। कवि के मन को बहलाने के लिए आते हैं। वह विह्वल एवं अधीर हो उठता है—यह जानते हुए कि जो कुछ उसे विभोर कर रहा है, वह नश्वर है।

इसी खंड में चार मुक्तक हैं—'खिलौना', 'पहरुआ' 'मुस्कान' और 'ब्याह'। 'खिलौना' में बचपन की झलक तथा खिलौना न मिलने पर रुठने की बात कही गई है। कवि को प्रातःकाल की प्रकाश किरण नहीं भाती। दिन में 'उठो और कर्म करो' का संदेश खड़ा नहीं करता। सांझ को खिलौने की मोमबत्ती और रात को नक्षत्र-तारे भी नहीं सुहाते। उसे यह सब कुछ नहीं, बल्कि ऐसा खिलौना चाहिए जो वापस बचपन में लौटा ले जाए। 'पहरुआ' कविता में कवि का प्राण ही पहरुआ है तो 'मुस्कान' कविता में प्रेयसी की स्मृति में कवि मुस्कराना चाहता है। इसलिए नहीं कि वह प्रसन्न है बल्कि इसलिए कि कभी प्रेयसी ने कहा था मुस्कराने के लिए। प्रिया की बात रखने के लिए उसकी अनुपस्थिति में वह मुस्कराता है। 'ब्याह' कविता में प्रेम और प्रणय परिभाषित है। प्रेम करना हंसी-खेल नहीं है बल्कि अपना घर जलाकर हाथ सेंकने जैसा है। जो घर जारे अपना चले हमारे साथ—संत कबीर की भांति त्रिपाठी जी ने भी 'सीस उतारें भुईं धरै' वाले प्रेम का वरण किया है। यहां मन एवं प्रकृति का समानांतर चित्रण है—

कहते हैं : चंदा-कोमदिनी मिलें, ब्याह तब होता है
कहते हैं : सूरज-सरोजिनी मिलें, ब्याह तब होता है
कहते हैं : कृत्तिका-रोहिणी मिलें, ब्याह तब होता है
होता होगा : ब्याह गगन से गिरता होगा; खबर नहीं
हम तो आग लगाकर घर में तुम्हें खोजने जाते हैं।

त्रिपाठी जी की कविताओं में त्यागमय प्रेम का उत्सर्ग है। सांसारिक भुलावों

से मुक्त उस चाह की ओर संकेत है जहां पूरी आत्मीयता है, निष्ठा है। सांसारिक जीवन का आकर्षण कवि को बांध नहीं पाता। उसके भीतर एक ललकती हुई प्यास है। उसे इस बात की चिंता नहीं है कि संसार के लोग उसके विचारों से सहमत हैं अथवा नहीं। 'मेरी प्यास' कविता में कवि ने प्रेयसी को अनेक आकर्षणों (रूप-राशि, वीणा जैसी मिठास, कंचन के समान दमकता रूप-सौंदर्य, मादक मुस्कान, लज्जा रूपी बादल एवं उस बादल में बिजली की भांति सहसा चमकने) से युक्त बताया है जो सांसारिक मनुष्य को विचलित करने में सक्षम होते हैं किंतु कवि के ऊपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी-कभी वह उदास एवं नीरस मन से उस सौंदर्य का पान कर लेता है। क्षण-भर के लिए बंध भी जाता है किंतु उसका मन असीम सत्ता के साथ लगा हुआ है। उसे बहुत आश्चर्य होता है कि विधाता ने इतने सारे रूपाकर्षण एक साथ क्यों एकत्रित कर दिए। चाहे जो कुछ हो, कवि अपनी मंशा इस तरह व्यक्त करता है—

फिर भी तो मैं बंध न सकूंगा / मैं हूं परम मुक्ति अभिलाषी
मानव के 'अविस्त हीन' का / मुझे बनाओ मत विश्वासी
मुड़ी में कस प्राण-मीन को / डालो नहीं बूंद भर पानी
मैं हूं अभिलाषी सागर का / तुमने मेरी प्यास न जानी!

स्वर सेतु संग्रह का दूसरा खंड है 'यात्रा-चिंतन'। इसमें 1950 से 1970 तक की इकतीस कविताएं संग्रहीत हैं जिनमें प्रमुख हैं—'यात्रा-चिंतन' विषयक छह कविताएं, 'नदी-तट', 'सांझ और मेरा प्रश्न', 'जिज्ञासा', 'अंतिम दो क्षण', 'मन की तस्वीरें', 'जड़ता', 'यह मैं हूँ', 'कल और आज', 'पूर्णकाम', 'धीमे बहो हवाओं' और 'यह उद्वेलन'। इन कविताओं पर तत्कालीन वातावरण का प्रभाव स्पष्ट है। यह नई कविता का उत्कर्ष काल है। बहुत व्यापक है कि इन कविताओं पर नई कविता का प्रभाव हो। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि 'यह प्रयोगवादी और नई कविता के प्रस्फुटन की अवधि है जब एक नए, व्यापक तथा उदार मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हो रहा था। वह अभिनव छंद-योजनाओं, शब्दों के नए ध्वन्यात्मक तथा आंतरिक अर्थों, विशृंखल भाव-चित्रों तथा मुक्त साहचर्य जैसे काव्योपकरणों के सहारे कविता को एक नई दिशा, एक नई दृष्टि देने के प्रयास का युग था। मेरे कवि ने जो भी जो संभव हुआ, इसमें योग दिया।' इस खंड की कविताएं जीवन के अनुभवों से संपृक्त हैं। इनमें कवि का मन सैलानी की भांति है। ऐसा सैलानी जो जीवन-मार्ग की कठिनाइयों के सामने विचलित नहीं होता। यहां प्रकृति के सुंदर तथा विद्रूप दोनों रूप हैं। कवि अगम्य हिमखंडों का रहस्य-पट खोलना चाहता है। उसमें अदम्य साहस है। वह मार्ग की विपत्तियों से भयभीत नहीं, बल्कि विपत्तियों के पहाड़ को ढोकर आगे बढ़ना चाहता है। तब तक आगे बढ़ता जाएगा जब तब सागर में एक बूंद भी शेष है—

अजस्र, नव, उष्ण रक्त
रूप, रस, गंध, स्पर्श प्यासे आभ्यंतर को
तुम्हीं ने अनायास दी अटूट वह आत्म तृप्ति
खोल दिए जिसने सब वातायन मन के
कपाट सभी अवरुद्ध कामना की कारा के
विमुक्त किया अंधतम : सन्निविष्ट यायावर आत्मा को
विटा के निमिषों की भूक निर्निमेष चितवन से
तुम्हीं ने दी शिखरवती, अग्रगामी, स्पष्ट दृष्टि...
जाता हूं अगम्य हिमखंडों के रहस्य-पट खोलने को
अदम्य पथचारी इन चरणों को तोलने को / आगे अब—जाता हूं!
आगे बढ़ता हुआ कवि कभी-कभी उदास हो जाता है। उसे प्रायः लगता

है कि वह पथभ्रष्ट हो गया है अथवा उसमें जीवन के प्रति कोई आकर्षण शेष नहीं रह गया है। यदि कोई आशा की किरण जागती भी है तो वह उसे व्यर्थ जान पड़ती है। वह मरु-छलना लगती है। कवि-यात्री धूप में झुलसने के वाद छाया की चाह करता है। थकान-भरी नींद में वह स्वप्न देखता है जिसमें जीवन-जगत के तमाम सुंदर दृश्य उभरते हैं। स्वप्न-कमल की एक पत्ती पर उसे बच्चे की किलकारी सुनाई देती है तो दूसरी पर लटों को सुलझाती हुई पत्ती। तीसरी पत्ती पर ममता-भरी मां की गोद और चौथा पत्ती पर नेत्रहीन, कृशकाय पिता की आंखों से लुढ़कता हुआ आंसू। उसके स्वप्न में समूचा बचपन किलकारियां मारने लगता है किंतु अल्पायु नींद और चंचल-स्वप्न उसका बाल-सुख छीन लेते हैं। इसीलिए कवि ने स्वप्न को जीवन की अनिवार्य मादकता किंतु निश्चित छलना कहा है। यहां हताशा नहीं है। सामने यात्रा-पथ पर टिमटिमाते जुगनू हैं, जिनके प्रकाश में वह आगे का रास्ता तय करता है। वह सूर्य के विराट आलोक की प्रतीक्षा करने में समय नष्ट नहीं करता—सूर्य विराट है / और उसकी अनुकंपा भी महद् / और शायद उसका आलोक-दान अयाचित ही है / पर अयाचित दान भी दान ही होता है / आत्मार्जन नहीं / जो मेरे ये जुगनू हैं / जो नितांत मेरे हैं / जिनको लेकर मैं ही चलूंगा / यात्रा पथ पर / अकेला ही... / सूर्य! तुम्हें नमस्कार!

अज्ञेय 'बावरा अहेरी' कविता में सूर्य से निवेदन करते हैं कि वह उनके भीतर व्याप्त अज्ञान के अंधकार को दूर दे। किंतु प्रयाग नारायण सूर्य के सामने झुकते नहीं, उससे निवेदन नहीं करते बल्कि नमस्कार करके आगे बढ़ जाते हैं—जुगनू के सहारे। अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव यहां स्पष्ट है।

संग्रह का तीसरा खंड है—'स्वर-सेतु'। इसमें तीस कविताएं हैं जिनमें प्रमुख कविताएं हैं—'अलग क्षितिज', 'पीड़ा', 'अरुणोदय का देश', 'सोना', 'जाल', 'दूधिया हंसी', 'संख्या भ्रम', 'प्रभु की खोज', 'तुम मुझे लौटा न देना', 'एक गीत', 'शक्तिशिक्षा', 'नाग-पाश' और 'स्वर सेतु'। इस खंड की कविताओं का रचनाकाल 1970 के वाद का है। इन रचनाओं के विषय में त्रिपाठी जी ने लिखा है—'मुझे ऐसा लगा है कि मेरी रचनाएं कसमसाती रही हैं। यह यात्रा अभी भी जारी है। अंत इसका कहाँ होगा, कब होगा, होगा भी या नहीं—कौन कह सकता है?' यह काल हिंदी कविता में साठोत्तरी कविता के नाम से विख्यात है जिसमें तमाम काव्यांदोलनों (अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, सचेतन, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता, ठोस कविता, विचार कविता, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, अस्वीकृत कविता, आदि) का प्रारंभ एवं अंत हुआ। किंतु प्रयाग नारायण त्रिपाठी इन आंदोलनों के वहाव एवं दबाव से सर्वथा मुक्त रहे। उनका मानना था कि 'कविता को किसी वाद या मुहर से जुड़कर रचना आवश्यक नहीं है। सत्काय्य सदा ही सत्काय्य रहा है और रहेगा। हां, यह युगानुरूप छंद-विधान, अभिव्यक्ति तथा शब्द-चयन अपनाएगा ही। प्रयोगवाद और नई कविता के उन्नायकों ने यही किया। विशिष्ट वे इसलिए रहे कि उन्होंने पूरी ईमानदारी से जीवन के प्रति गहन आस्था, विषय की व्यापकता, सर्जन की उन्मुक्तता, अनुभूति की सच्चाई और विवेक-सम्मत यथार्थवादी दृष्टि को अपनाया और अभिव्यक्त किया।'

'पूर्णकाम' कविता की पंक्तियां त्रिपाठी जी के इन्हीं विचारों को प्रमाणित करती हैं—

शास्त्रों ने मुझसे कहा : 'चरैचेति', 'चरैवेति'—

चलते चलो, चलते चलो....

और मैंने दफ्तर में चाकरी कर ली

जहां नियम से सबेरे मेरे पांव पहुंच जाते हैं

और शाम को वापस चल देते हैं

अकेले ही नहीं होते मेरे दो पांव

उनके साथ मोटरों, स्कूटरों, साइकिलों और

पांवों की एक अटूट भीड़ होती है

चरैवेति को चरितार्थ करती हुई

दफ्तर में फाइलें चलती हैं / वाय चलती है / 'सब चलता है'

और बंद कमरे की निश्चल कुर्सी के सहारे

गांव-गांव और घर-घर में

सरकार चलती है।

धूमिल की कविता 'किस्सा जनतंत्र का', 'घरों में वापसी' या 'संसद से सड़क तक' की अधिकांश कविताओं में व्यंग्य का यही स्वर मुखरित है।

संग्रह का अंतिम खंड है—'प्रतिविंब'। इसमें युग के महान मनस्वी, योगी, राजनेता, देशभक्त, समाज सुधारक, शिक्षाशास्त्री श्री अरविंद की कुछ कविताओं का भावानुवाद है। श्री अरविंद को लोग मूलतः एक योगी या दार्शनिक मानते हैं परंतु उन्होंने काव्य, नाटक, कथा, निबंध लेखन के साथ-साथ राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र आदि पर भी अपने विचारों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया था। उनका अद्वितीय महाकाव्य सावित्री है जिसकी रचना में वे जीवन की अंतिम घड़ियों तक प्रवृत्त रहे। त्रिपाठी जी ने जीवन का अधिकांश—विशेषकर उत्तरार्द्ध—श्री अरविंद के साहित्य के अध्ययन एवं मनन में व्यतीत किया। उन्होंने श्री अरविंद की कुछ रचनाओं का भावानुवाद इसलिए प्रस्तुत किया कि लोग उस महान योगी के विचारों से अवगत हो सकें। श्री अरविंद को पढ़ना एवं समझना आसान नहीं है। पढ़ना यदि पढ़ने के लिए है तो कुछ हाथ नहीं लगेगा। संपूर्ण शुचिता के साथ निष्ठा एवं लगन से पढ़ने पर ही उन्हें समझा जा सकता है। रामधारी सिंह दिनकर तथा सुमित्रानंदन पंत ने उनकी कुछ कविताओं का अनुवाद किया है। डा. शिवप्रसाद सिंह ने उत्तरयोगी शीर्षक से श्री अरविंद की जीवनी लिखकर अपनी आस्था व्यक्त की है। प्रयाग नारायण त्रिपाठी की श्रद्धा भी सघन थी। जीवन में उन्होंने साधना-मार्ग अपनाया था।

श्री अरविंद की रचनाओं के भावानुवाद के पीछे उन्होंने अपना मतव्य स्पष्ट किया है—'इस प्रयास के पीछे यह आशा भी प्रच्छन्न है कि आप स्वयं भी शायद श्री अरविंद काव्यामृत का आस्वादन करने की इच्छा से प्रेरित हो सकेंगे। ऐसा होगा तो आप पाएंगे कि वह रत्नाकर है। वह दिव्य-भव्य चेतना से अभिषिक्त है। वह मंत्र शक्ति का जीवंत प्रवाह है। वह कल के विश्व-मानव के लिए आज के ऋषि-रचनाकार की कल्याणी वाणी है।'

'सावित्री का जन्म', 'अग्निवधू', 'और एक दिन और', 'ईश्वर', 'जीवन-मरण', 'वैश्व मानव' और 'परम लय' शीर्षक से ये भावानुवाद किए गए हैं। 'सावित्री का जन्म' शीर्षक भावानुवाद की कुछ पंक्तियों को प्रस्तुत करके महान योगी श्री अरविंद के प्रति तथा श्री अरविंद-साहित्य के निपुण अध्येता एवं तपस्वी प्रयाग नारायण त्रिपाठी जी को श्रद्धांजलि निवेदित है—

उसकी प्रकृति समस्त प्रकृति के स्पंदन से समरस थी

अंतरंग औ विलग, किंतु कर रही वहन सब जीवन

पृथक, किंतु उसमें ही स्थित थी निखिल विश्व की क्रीड़ा।

उसका भय था भय विराट इस अचैतन्य संसृति का

उसका बल था, जड़-जंगम की ऊर्जाओं का संचय। □

संपर्क : शिव.3/163 ए- 39, सर्वेश्वरी नगर, नवलपुर, वाराणसी-221003

नेपाली जी की याद

● ठोकरें तो हर कदम पर हैं,
रहेंगी जिंदगी का काफिला चलता
रहेगा—देवेन्द्र आर्य के ये शब्द
संघर्षमय जीवन की ओर इंगित
करते हैं। शैदी साहब भी ऐसा ही
मानते हैं— रहना है संघर्षरत। मिले
जीत या हार। बालकृष्ण मिश्र के
गीत के बोल स्वार्थ की धरती पर
खड़े रिश्ते-नातों की पोल खोल रहे
हैं—मन के नहीं रह गए अब तो।
रिश्ते हैं धन के।

रमानाथ राय की कहानी
'तिर्पजिले का कमरा' परिवार से
उपेक्षित बुजुर्ग की व्यथा-कथा
व्यक्त करता है। निर्मला सिंह की
लघुकथा आधुनिक दिग्भ्रमित छात्रों
पर व्यंग्य बाण है।

दादूराम शर्मा, शेफाली शर्मा
एवं सुनील कुमार अग्रवाल के
आलेखों में : 'कालिदास के काव्य
में अरण्य संस्कृति', 'भारतीय
संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण' तथा
सांस्कृतिक प्रदूषणजन्य समस्याओं
पर विचार व्यक्त किया गया है।
जरूरत है प्रकृति से जुड़ने की।

'कीर्ति स्तंभ' के अंतर्गत
जन-जन की वाणी के गायक
गोपाल सिंह नेपाली के विशद
व्यक्तित्व के अनेक अनछुए प्रसंगों
में नंदन जी ने बहुज्ञता का प्रदर्शन
किया है, जिसमें नेपाली जी का
स्वाभिमान आसमान छू रहा है।

प्रकृति प्रेमी होने के बावजूद
नेपाली जी के पैर यथार्थ की
धरती पर टिके थे।

आजादी के बाद स्वार्थ में
लीन सत्ताभागी नेताओं के विरोध
में उनका स्वर मुखर हुआ— राज
है गरीब का ताज दानवों की! तख्त
भी उलट गए। याचना गई नहीं।

रोटियां गरीब की प्रार्थना बनी
रहीं। धार्मिक कट्टरता और
संकीर्णता के इस माहौल में
सांस्कृतिक समन्वय के गायक
रहीम की चर्चा भी प्रासंगिक है।

—राम बहाल सिंह, मुजफ्फपुर

सच का साहस

● यों तो लगभग सभी लेख उच्च
श्रेणों के लगे, लेकिन सबसे अधिक
अंक अर्जित किए मैत्रेयी पुष्पा से
वैशाली श्रीवास्तव की वेबाक
वातचीत ने। अपनी रचनाओं की
तरह इस भेंटवार्ता में भी कथाकार
मैत्रेयी पुष्पा ने निर्द्वंद्व भाव से सच
कहने में तनिक भी संकोच नहीं
किया। यही निडरता और सत्यनिष्ठा
ही उन्हें अपने समय के अन्य हिंदी
लेखकों-लेखिकाओं की तुलना में
विशिष्टता प्रदान करती है।

'कीर्ति स्तंभ' के अंतर्गत
राष्ट्रवादी कवि नेपाली का परिचय
मार्मिक के साथ-साथ प्रेरक भी है।
वैसा स्वाभिमान और फाकामस्ती
अब साहित्य के दुर्लभ तत्त्वों में
शामिल हो चुकी है। रहीम के दोहों
के तर्क और उनमें निहित
साहित्यिक-सांस्कृतिक संदर्भों की
पहचान हैं दोनों लेख। इस अंक
की अन्य उपलब्धियां हैं कहानियां,
गीत और कविताएं।

रचनाकारों के परिचय में
केवल यह लिखना कि जाने-माने
कथाकार लेखक या कवि हैं,
पर्याप्त नहीं है। रचनाकार का पूरा
परिचय दें या कुछ भी न लिखें।

—सुभाष सेतिया, दिल्ली

नेपाली जी का व्यक्तित्व

● 'कीर्ति-स्तंभ' के अंतर्गत
'जन-जन की वाणी के गायक'
गोपाल सिंह नेपाली' शीर्षक लेख में
जनचेतना के कवि नेपाली के
व्यक्तित्व और कृतित्व पर नंद
किशोर नंदन के शब्दों और चिंतन
की श्रद्धांजलि सराहनीय ही नहीं

अनुकरणीय भी है। कवि नेपाली के
साहित्यिक योगदान से पाठकों को
अवगत कराकर आपने कवि की
रचनाधर्मिता में सम्मिलित राष्ट्र-प्रेम
के गूढ़ तथ्यों को उकेरा है। नेपाली
हिंदी के ही नहीं, 'नेपाली' भाषा के
भी कवि हैं। उनकी नेपाली कृतियों
में कल्पना (कविता-संग्रह), रानी
(खंडकाव्य) और धारा उपन्यास है।

अजीबोगरीब बात यह भी है
कि कवि नेपाली के खंडकाव्य पंथी
का नेपाली अनुवाद चरा 1997 में
पाइन प्रकाशन, सोनादा, दार्जिलिंग
ने प्रकाशित किया है। अनुवादक हैं
नेपाली के विख्यात लेखक कुमार
घिसिड कवि के प्रति अभिव्यक्त
उद्गार जो मूल खंडकाव्य में छपा
था सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का,
उसका अनुवाद की नेपाली में है।
नेपाली में अनूदित एक पंक्ति यहां
उद्धृत करना चाहता हूँ—

गोपाल सिंह 'नेपाली' जी लाई
मेरो हार्दिक शुभकामना छ, नेपाली
ले प्रतिनिधि कवि को हैसियतले
राष्ट्रवादी को पावन वीणा
बजाइरहन।

1943 में कविगुरु रवींद्रनाथ
ठाकुर की प्रसिद्ध कविता उर्वशी
का अंग्रेजी में अनुवाद करके कवि
नेपाली ने सुनाई थी, कवि गुरु ने
नेपाली की तुलना माइकेल
मधुसूदन से की थी।

कवि नेपाली फुटबल के भी
खिलाड़ी थे खिलाड़ी की हैसियत से
उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र
प्रसाद से 'स्वर्ण पदक' मिला था।
नीलिमा और रागिनी कविता-संग्रह
के लिए कवि नेपाली को 'विहार
का बुलबुल' और 'हिंदी का
वईसवर्ष' की उपाधि दी गई थी।
नेपाली कविता संग्रह भाग-1 से
उद्धृत नेपाली की नेपाली कविता
की चंद पंक्तियां ऐसी हैं—

म सम्झन्छु, तिमिले सम्झे झन्
मेरो मन कस्तो होला।

तिम्रो मनमा बस्न पाए, हास्रो
जीवन कस्तो होला?

तिम्रो मेरो मन मित्यो भने
मनको बंधन कस्तो होला?

—बिर्ख खड्का डुवसेली, दार्जिलिंग

कहानियों की कमी

● पत्रिका के प्रारंभ से आखिरी
लेख तक मन लगा रहता है। शांति
सुमन की कविताएं पढ़कर अच्छा
लगा, एक सहजता और मिठी की
महक उनकी कविता में होती है।

नंदन जी का गोपाल सिंह
नेपाली पर लेख रुचिकर लगा।
उन्होंने बड़े प्रभावी ढंग से उनके
क्रांतिकारी चरित्र को समझा और
समझाया है। कालिदास पर भी
लेख पठनीय था। मगर सबसे
खास बात है 'आगा हश्न कश्मीरी'
और रहीम के बारे में जानकारीयां।

रहीम पर जानकारी तो थी
मगर इतनी अच्छी तरह से नहीं,
और जहां तक आगा साहब की
बात है, तो मुझे लगता है कि
इतनी बड़ी प्रतिभा को शायद बहुत
कम लोग जानते हैं।

'विप्लवी पुस्तकालय' के बारे
में जानकर बड़ी हसरत जगी है
इसे देखने की।

सिर्फ दो कहानियों से मन
नहीं भरा। ऐसा लगा कि कहानियां
और होनी चाहिए थीं। फिर भी,
अनुवादित कहानी ही ज्यादा
मर्मस्पर्शी रही। यह कहानी,
संवेदना जगाने में पूरी तरह सफल
हुई। महीष सिंह कहानी की
संवेदना से लोगों को जोड़ने में
पूरी तरह कामयाब नहीं लगते।

नईम पर आधारित लेख
तथा मैत्रेयी पुष्पा के इंटरव्यू में
उनकी सोच मुझे काफी अच्छी
लगी। यह जानकर अच्छा लगा
कि वे अभी भी मिठी से जुड़ी हुई
हैं।

—अजय 'माहताब', जमशेदपुर

प्रेमचंद का लमही

31 जुलाई को प्रेमचंद के जन्मदिवस पर देश-भर से प्रेमचंद साहित्य के रसिक और विद्वान लमही पधारे। लमही में प्रेमचंद द्वारा को सराहना तो मिली ही, उनके पात्रों के मूर्तिशिल्प भी पसंद किए गए। प्रेमचंद का घर भी ठीक कराया गया। इस अवसर पर अनेक विचार चर्चाएं हुईं और 'सेतु' ने प्रेमचंद की कहानी का मंचन भी किया। मूर्तिकार जे.एम. नेल्सन ने भी मुंशी प्रेमचंद की स्मृति में एक सम्मान प्रारंभ किया है जिसके तहत 11,000 रुपये की राशि भी होगी।

देवदास का मंचन

कथाकार एस. आर. हरनोट की 'डिजाइन इंडिया' के तत्वावधान में शरत चंद्र के उपन्यास देवदास का मंचन शिमला में किया गया। नाट्य रूपांतर कथाकार-पटकथाकार जगदंबा प्रसाद दीक्षित ने किया।

नरेंद्र सम्मान

कुंवर नरेंद्र प्रताप सिंह की स्मृति में प्रारंभ किया गया नरेंद्र सम्मान कथाकार उदय प्रकाश को गोरखपुर में प्रदान किया गया। समारोह की अध्यक्षता की सांसद योगी आदित्यनाथ ने। पुरस्कृत कथाकार भ्रमण के लिए घौना बाबा की समाधि और कुशीनगर की गलियों में भी गए।

कथा यात्रा 2009

हरियाणा साहित्य अकादमी के तत्वावधान में 'कथा उत्सव' का आयोजन किया गया। पंचकुला में इस अवसर पर कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कथाकारों को हरियाणा के शिक्षामंत्री ने पुरस्कार प्रदान किए। मुख्य अतिथि कथाकार चित्रा मुदगल ने मौजूदा सामाजिक परिदृश्य को समझते हुए कथा-लेखन की जरूरत पर बल दिया। इस अवसर पर कथायात्रा 2009 पुस्तक का लोकार्पण भी हुआ। पुस्तक के संपादक हैं— महेश दर्पण और देवेंद्र चौबे। संपादक द्वय ने वर्तमान संदर्भ में प्रेमचंद की प्रासंगिकता की भी चर्चा की।

'कवि संधि' में रामदरश मिश्र

साहित्य अकादमी ने 'कवि संधि' के अंतर्गत वरिष्ठ कवि रामदरश मिश्र का काव्य पाठ आयोजित किया। अकादमी के सभागार में मिश्र जी ने काव्य रसिकों को दोर तक अपनी रचनाएं सुनाईं। कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने गीत और गजलों भी प्रस्तुत कीं। छोटी कविताएं जहां मन को छू गईं, वहीं गजलों ने श्रोताओं को खूब प्रभावित किया। काव्य-प्रस्तुति के बाद कुछ विद्वानों ने इन रचनाओं पर आलोचनात्मक टिप्पणी भी की। सभा का संचालन किया साहित्य अकादमी के उपसचिव गुण शेखरन ने।

मिथक के अनाद्य से उठता समकालीन

नेशनल द्वारा सद्य प्रकाशित उद्भ्रांत के महाकाव्य त्रेता और लंबी कविता 'अनाद्यसूक्त' एवं डा. आनंद प्रकाश दीक्षित की पुस्तक त्रेता: एक अंतर्यात्रा के लोकार्पण के बहाने 'मिथक के अनाद्य से उठता समकालीन' विषय पर एक चर्चा राजधानी के गांधी शांति प्रतिष्ठान में हुई। प्रो. नामवर सिंह ने जहां 'अनाद्य सूक्त' को कवि की प्रतिनिधि रचना बताया, वहीं त्रेता को रामायणकालीन स्त्रियों की गाथा। प्रो. खगेंद्र ठाकुर और सुरेश शर्मा ने इन रचनाओं के साथ

ही 'मिथक के अनाद्य से उठता समकालीन' पर विचार व्यक्त किए।

साहित्य सम्मान

अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान और पदमानंद साहित्य सम्मान लंदन में क्रमशः भगवान दास मोरवाल और मोहन राणा को दिया गया। इस अवसर पर टोनी मैकनल्डी, लॉर्ड तररोम किंग, एंड्रयू डिसमोर, मोनिका मेहता, विभूति नारायण राय, आनंद कुमार मुख्य अतिथियों में शामिल थे। यह कथा सम्मान यू.के. की ओर से प्रदान किए गए।

हिंदी अनुवाद संग्रह

एच. एस. विश्व प्रकाश के तीन कन्नड़ नाटकों के हिंदी अनुवादों का विमोचन इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में प्रो. नामवर सिंह ने किया। इस अवसर पर देवेंद्र राज अंकुर, गंगा प्रसाद विमल, के.एस. राजेंद्रन, मीराकांत और रणजीत साहा मौजूद थे। नाटकत्रयी नामक इस पुस्तक की सभी ने प्रशंसा की।

एकल काव्य-पाठ

साहित्य अकादमी के राजभाषा मंच द्वारा लक्ष्मीशंकर वाजपेयी का एकल काव्य पाठ कराया गया। उप सचिव ब्रजेंद्र त्रिपाठी के संचालन में कवि ने अपनी चयनित कविताएं, गीत, दोहे और गजलों सुनाईं। महात्मा गांधी विश्वविद्यालय के दिल्ली केंद्र में यू के एस चौहान का एकल काव्य-पाठ आयोजित किया गया। इस पंच का उद्घाटन प्रो. नामवर सिंह ने किया। यू. के. एस. ने बीस वर्ष के अनुभवों पर आधारित कविताओं का पाठ किया।

कलईकूडम की रजत जयंती

'कलईकूडम' की रजत जयंती का आयोजन एक संगोष्ठी से 21 जुलाई को प्रारंभ हुआ। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'सांस्कृतिक नीति की ओर' पर चर्चा भी हुई। इस अवसर पर नृत्यांगना कोमला वरदन का कहना था कि हमारा प्रयास क्षेत्रीय और भाषिक बंधनों को छोड़ लोगों को निकट लाने का है।

दो दिवसीय नृत्य-संगीतोत्सव में 22 जुलाई को एन. विजय शिवा ने कर्नाटक संगीत पेश किया। समापन कोमला वरदन के भरतनाट्यम से हुआ जिसमें मानस प्रसंगों की आकर्षक प्रस्तुति थी।

जे.सी. जोशी स्मृति सम्मान

जे.सी. जोशी स्मृति सम्मानों के अंतर्गत इस वर्ष सात सम्मान प्रदान किए गए। सर्वप्रथम 'शब्द-साधक शिखर सम्मान' दिया गया वरिष्ठ कथाकार श्रीलाल शुक्ल को। शब्द साधना जूरी सम्मान भगवान दास मोरवाल को रेत उपन्यास के लिए, 'जनप्रिय लेखक सम्मान' काशीनाथ सिंह को रेहन पर रघु के लिए। एस. आर. हरनोट को जीन-काई और अन्य कहानियों के लिए, कविता के लिए शैलेय को, आलोचना में अपूर्वानंद को, साहित्य का एकांत के लिए और शब्द साधना युवा सम्मान रमेश कुमार वर्णवाल की कविता 'एक पुरातत्वविद की डायरी से' के लिए प्रदान किया गया।

यह सम्मान 'पाखी' की प्रथम वर्षगांठ पर प्रदान किए गए। अस्वस्थ होने के कारण श्रीलाल शुक्ल समारोह में न आ सके।

भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार

भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार कविता 'स्थगन' के लिए मनोज कुमार झा को दिए जाने की घोषणा की गई। इस बार के निर्णायक थे अरुण कमल। यह कथन में प्रकाशित कविता है। निर्णायक का कहना है कि— 'मैथिली शब्दों-मुहावरों वाली उनकी कविता हिंदी को एक मलिनोपन देती है।'

छह गज़लें: कृष्ण शलभ

एक

कहीं से बीज इमली के, कहीं से पर उठा लाई
ये बच्ची है बहुत खुश, एक दुनिया घर उठा लाई
दिसंबर छह से पहले प्यार से मिलती थी सलमा से
शहर को क्या गई, बूढ़ी बुआ तो डर उठा लाई
अमीरे शहर गाफिल ही रहा जिनकी जरूरत से
उन्हीं को रात में फुटपाथ के बिस्तर उठा लाई
किया क्या रात ने, हम पूस की सर्दी के मारे हैं
भला हो सुबह का, जो धूप की चादर उठा लाई
बड़ी मुद्दत से तनहा हूं, पलट जिसने नहीं देखा
उसी की चीख अंदर से मुझे बाहर उठा लाई!

दो

उसकी बातों पे ध्यान मत देना
हाथ उसके कमान मत देना
पंख जल जाएं आ के सूरज तक
इतनी ऊंची उड़ान मत देना
जिसपे नादिम हों अपनी संतानें
ऐसा झूठा बयान मत देना
अपनी औकात भूल जाऊं मैं
कोई ऐसा गुमान मत देना
बोल मीठे न बोल पाए दो
या खुदा वो जुबान मत देना!

तीन

चेहरे पर चेहरा मत रख
तू खुद को ऐसा मत रख
सब तेरी मुट्ठी में है
ऐसा तो दावा मत रख
तुझको मंजिल पानी तो
कभी कदम आधा मत रख
काम चले, बस इतना रख
दौलत को ज्यादा मत रख
बार्ते चाहे जैसी कर
लहजे को तीखा मत रख!

चार

हर तरफ घुप्प-सा अंधेरा है
क्यों है, क्या ये भी तूने सोचा है
सबको अपना कहो, मिलो सबसे
जिंदगी चार दिन का मेला है
तू मिला, दिल गया, सकून गया
ये करिश्मा भी, यार, तेरा है
गुफ्तगू कर मियां सलीके से
बदजुबानी कोई सलीका है!

पांच

जाने हैं हम, तुम कैसे थे, क्या हो गए, बताना क्या
रस्मन आओ बोल-चाल लें, ऐसा भी घबराना क्या
तुम मुझसे पूछो हो, सब कुछ ठीक-ठाक है, बोलूं क्या
क्या कुछ कितना टूट गया है, समझो हो, समझाना क्या
मिल जाएं तो अपने दीखें, बिछड़ें तो बेगाने-से
हाथ मिला जो हाथ झटक लें, उनसे हाथ मिलाना क्या
मुद्दत हुई, किया था वादा आने का, पर नहीं आए
तुमने अपने जी की कर ली, छोड़ो भी शरमाना क्या
रिश्ता तो रिश्ता है, रिश्तेदारी दिल का सौदा है
दिल ही न माने तो फिर प्यारे, खाली आना-जाना क्या
उठो शलभ जी डेरा छोड़ो, क्यों मन भारी करते हो
अपनी सांस नहीं जब अपनी, फिर अपना-बेगाना क्या!

छह

अगर सूरत बदलनी है तो फिर ये सोचना कैसा
चलो आगे बढ़ो, पीछे को मुड़कर देखना कैसा
हवा आने दो ताजा, खोल दो सब खिड़कियां घर की
हवा पे सबका हक है, यों हवा को रोकना कैसा
ये बच्चे नासमझ हैं, बददुआ देना नहीं अच्छा
अरे छोड़ो मियां, इस उम्र में ये बचपना कैसा
ये दुनिया प्यार के बिन तो बड़ी बेकार लगती है
'शलभ' उठो, यहां अब और ज्यादा बैठना कैसा!

संपर्क : संकल्प', पश्चिमी पंत विहार, सहारनपुर-247001 (उ. प्र.)

वार्षिक मूल्य: 100 रुपये

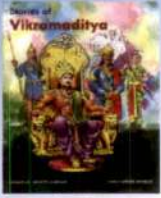
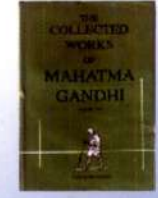
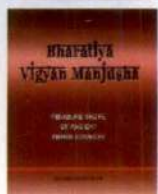


प्रकाशन विभाग की घरेलू पुस्तकालय योजना

पुस्तक प्रेमियों के लिए सदस्य बनने का सुनहरा अवसर

विशेष आकर्षण :

1. केवल 100 रुपये देकर आजीवन सदस्यता प्राप्त करें।
2. प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित किसी भी पत्रिका का तीन वर्ष के लिए ग्राहक बनने पर सदस्यता केवल 50 रुपये में प्राप्त की जा सकती है।
3. सामान्य छूट के बाद सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 20 प्रतिशत की विशेष छूट दी जाएगी।
4. सामान्य छूट के बाद पांच सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर सदस्य को 25 रुपये मूल्य की पुस्तकें/पत्रिकाएं उपहार में दी जाएंगी।
5. सदस्यों को प्रकाशन विभाग की पुस्तकों की सूची निःशुल्क दी जाएगी।



सदस्यता फार्म तथा अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें—

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स,

लोदी रोड, नई दिल्ली - 110 003

फोन : 24365610, 24367260

फैक्स : 011-2436 5609

ई-मेल : dpd@sb.nic.in, dpd@mail.nic.in

वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

विक्रय केंद्र: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110 003 (ट.24367260). हाल नं० 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054 (ट.23890205). सी-701, केंद्रीय सदन, बेलपुर, नवी मुंबई-400 614 (ट.27570686). 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता-700 069 (ट.22488030). राजाजी भवन, एफ एंड जी ब्लॉक, 'ए' विंग बेसेंट नगर, चेन्नई-600 090 (ट.24917673). बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004 (ट.2683407). प्रेस रोड, निकट गवर्मेन्ट प्रेस तिरुवनंतपुरम-695 001 (ट.2330650). हाल नं.1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226 024 (ट.2325455). ब्लॉक नं. 4, गुडकल्प कॉम्प्लेक्स, एम.जी. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500 001 (ट.24605383). प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560 034 (ट.25537244). अमिका कॉम्प्लेक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद-380 007 (ट.26588669). हाउस नं. 07, न्यू कालोनी, चेन्नई-600 007 (ट.2665090).

* प्रकाशन विभाग समाचार पत्रों में विज्ञापन के जरिए एक महीने का नोटिस देकर इस योजना को समाप्त कर सकता है।